नवबर—2021
वर्ष—85 । अंक—11 । ₹—19 प्रति । ₹—220 वार्षिक

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

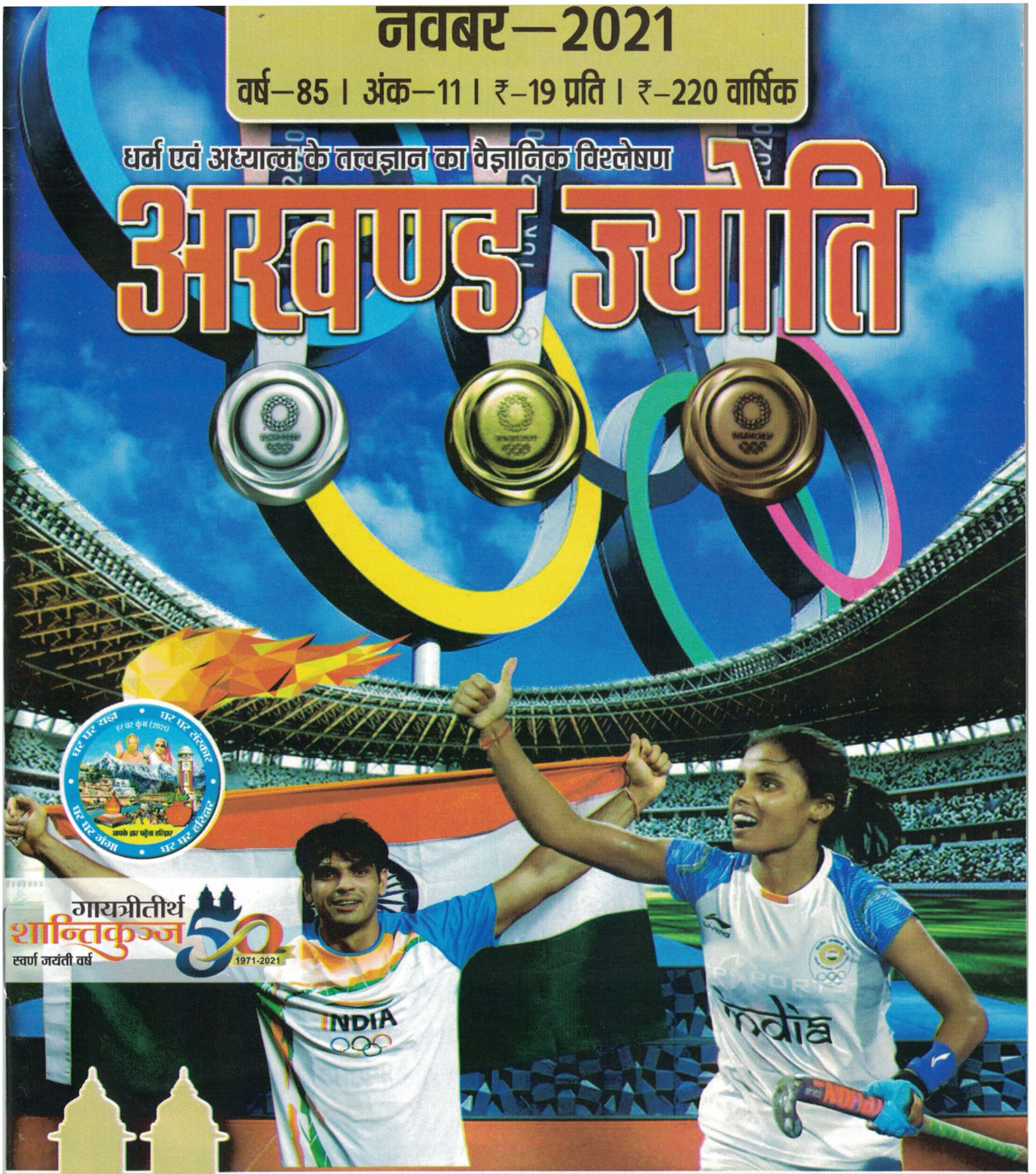

अखण्ड ज्योति

7 अध्यात्म का प्रथम सोपान—बनें पहले अच्छा इनसान
14 बच्चों में बोएँ सद्‌गुणों के बीज
27 भारत में सूर्य—उपासना
44 ऐसे बनें भगवान के हाथों का यंत्र

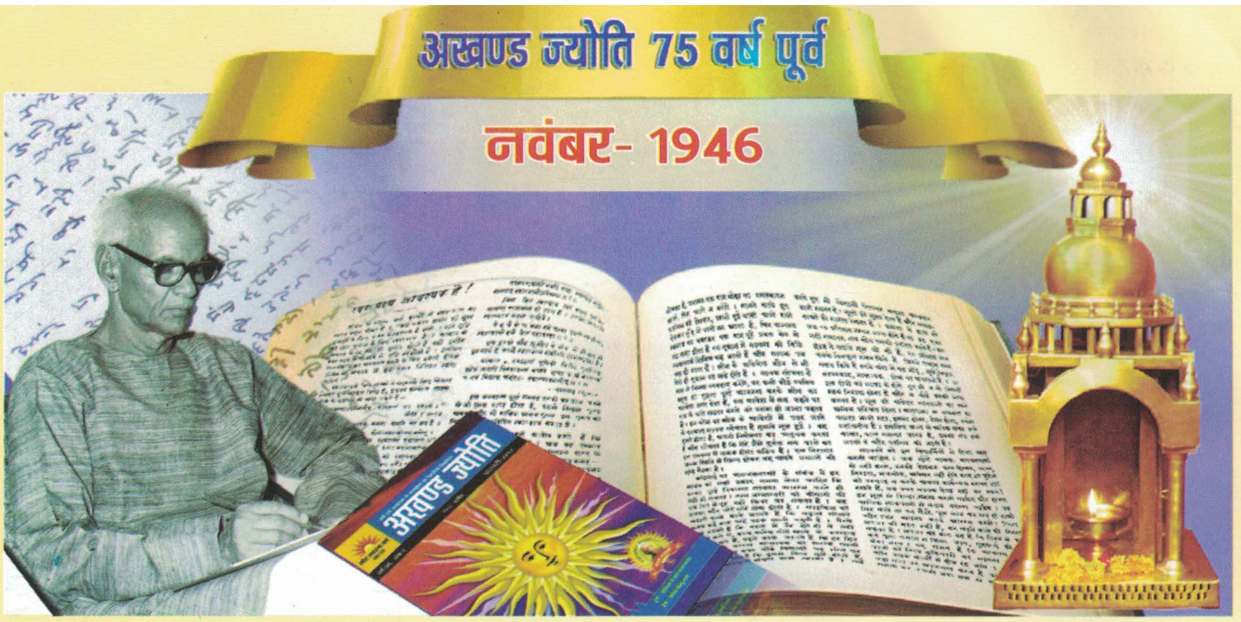

भलाई करना ही सबसे बड़ी बुद्धिमानी है।

"दुष्ट लोग उस मूर्खता से नहीं डरते, जिसे पाप कहते हैं। मगर विवेकवान सदा उस बेवकूफी से दूर रहते हैं। बुराई से बुराई ही पैदा होती है, इसलिए बुराई को अग्नि से भी भयंकर समझकर उससे डरना और दूर रहना चाहिए। जिस तरह छाया मनुष्य को कभी नहीं छोड़ती, वरन जहाँ-जहाँ वह जाता है, उसके पीछे-पीछे लगी रहती है। उसी तरह पापकर्म भी पापी का पीछा करते हैं और अंत में उसका सर्वनाश कर डालते हैं। इसलिए सावधान रहिए और बुराई से सदा डरते रहिए।

जो काम बुरे हैं, उन्हें मत करो; क्योंकि बुरे काम करने वालों को अंतरात्मा के शाप की अग्नि में हर घड़ी झुलसना पड़ता है। वस्तुओं को प्रचुर परिमाण में एकत्रित करने की कामना से, इंद्रिय भोगों की लिप्सा से और अहंकार को तृप्त करने की इच्छा से लोग कुमार्ग में प्रवेश करते हैं। पर यह तीनों ही बातें तुच्छ हैं। इनसे क्षणिक तुष्टि होती है, पर बदले में अपार दुःख भोगना पड़ता है। खाँड़ मिले हुए विष को लोभवश खानेवाला बुद्धिमान नहीं कहा जाता., इसी प्रकार जो तुच्छ लाभ के लिए अपार दुःख अपने ऊपर लेता है, उसे भी समझदार नहीं कह सकते।

इस दुनिया में सबसे बड़ा बुद्धिमान, विद्वान, चतुर और समझदार वह है, जो अपने को कुविचार और कुकर्मों से बचाकर सत्य को अपनाता है, सत् मार्ग पर चलता है और सत् विचारों को ग्रहण करता है। यही बुद्धिमानी अंत में लाभदायक ठहरती है और दुष्टता करने वाले अपनी बेवकूफी से होने वाली हानि के कारण सिर धुन-धुनकर पछताते हैं।"

— पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।
उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम्।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2402574
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	: 85
अंक	: 11
नवंबर	: 2021
कार्तिक-मार्गशीर्ष	: 2078
प्रकाशन तिथि	: 01.10.2021

वार्षिक चंदा

भारत में	: 220/-
विदेश में	: 1600/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में	: 5000/-

चरित्र

श्रेष्ठ एवं प्रामाणिक चरित्र को ही परिष्कृत व्यक्तित्व की एकमात्र पहचान कहा जा सकता है। यदि यह पूछा जाए कि चरित्र क्या है तो ऐसा कहा जा सकता है कि सद्गुणों का समुच्चय ही चरित्र है। सद्गुणों के सत्परिणामों से भला कौन अपरिचित होगा? सभी जानते हैं कि सद्गुण ही अच्छे चरित्र और मजबूत व्यक्तित्व का आधार होते हैं; फिर उनको अपने जीवन में, अपने व्यवहार में उतारने में इतनी कठिनाई क्यों होती है अथवा प्रयत्न किया भी जाए तो राहें इतनी दुष्कर क्यों हो जाती हैं?

इसके पीछे का मुख्य कारण यह है कि व्यक्ति पूर्णतया 'स्व' पर केंद्रित हो जाता है और उसका संपूर्ण जीवन अहंकार से उपजी कामनाओं को पूर्ण करने में लग जाता है और इसलिए उसके लिए अपने चरित्र का परिष्कार कर पाना संभव नहीं हो पाता। जो अपने आप को कूपमंडूक की तरह से एक छोटे से दायरे में बाँध लेते हैं और अपने आचरण पर ध्यान नहीं दे पाते; उनके जीवन का दायरा बस उनकी सुविधाओं, कामनाओं की पूर्ति की दौड़ में ही सिमटकर रह जाता है। ऐसे लोग नीति, सदाचार की बातें भर कर पाते हैं, परंतु अपनी संकीर्ण स्वार्थपरता से जकड़े रहने के कारण वे कभी भी चरित्र निर्माण नहीं कर पाते हैं।

सद्गुणों की उत्पत्ति दृष्टिकोण के परिवर्तन से ही हो पाती है। अपने संकीर्ण स्वार्थ का त्याग कर देने पर ही और एक विराट का अंग बन पाने पर ही वह अनुभूति हो पाती है, जिसे चरित्र निर्माण का आधार कह सकते हैं। शरीर के समूचे ढाँचे के सक्षम रहने पर भी उसके प्रत्येक अंग का अपना विशेष महत्त्व है। उस अकेले के परिपुष्ट होने का आधार समग्र के स्वस्थ रहने पर ही संभव है। चरित्र निर्माण का भी यही आधार है। सद्गुणों का परिपोषण ही चरित्र को वो दिशा दे पाता है, जिसे महान व्यक्तित्व का आधार कहा जा सके। ❑

विषय सूची

- आवरण—1 — 1
- आवरण—2 — 2
- चरित्र — 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  दिलों को जगमग करे दीवाली — 5
- अध्यात्म का प्रथम सोपान
  बनें पहले अच्छा इनसान — 7
- सद्गृहस्थ की सामर्थ्य — 9
- **दीपोत्सव पर्व**
  दृष्टिकोण के परिवर्तन का पर्व — 12
- बच्चों में बोएँ सद्गुणों के बीज — 14
- ब्रह्मांड में व्याप्त प्राण-ऊर्जा — 17
- ब्रह्मसूत्र के भाष्यकारों की दृष्टि में
  ब्रह्म एवं जगत् — 19
- क्यों दु:खी है इनसान? — 23
- करुणा व प्रेम के मूर्तिमान रूप भगवान बुद्ध — 25
- भारत में सूर्य-उपासना — 27
- बढ़ चलें ईश्वरोन्मुखी जीवन की ओर — 29
- राष्ट्र समृद्धि का मूलमंत्र — 33
- सुखी दांपत्य जीवन — 35
- **चेतना की शिखर यात्रा—230**
  साधना स्वर्ण जयंती — 37
- नालंदा का स्वर्णिम इतिहास — 40
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—151**
  कैंसर की मनोआध्यात्मिक चिकित्सा — 42
- ऐसे बनें भगवान के हाथों का यंत्र — 44
- परिश्रम के साथ विश्राम भी है जरूरी — 46
- प्रकृति की अनमोल धरोहर है जल — 48
- **युगगीता—258**
  जिनके धर्मार्थ कार्य भी
  पाखंड और आडंबर से पूर्ण होते हैं — 50
- प्रात:कालीन जागरण
  बने दिनचर्या का हिस्सा — 52
- संत विनोबा भावे — 54
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—2**
  ज्ञान और पराक्रम का पथ अध्यात्म (उत्तरार्द्ध) — 56
- **विश्वविद्यालय परिसर से—197**
  नारी जाग्रति को संकल्पित विश्वविद्यालय — 62
- **अपनों से अपनी बात**
  ऐतिहासिक संकल्पों की भूमि है शांतिकुंज — 64
- आत्मिक ज्योति (कविता) — 66
- आवरण—3 — 67
- आवरण—4 — 68

आवरण पृष्ठ परिचय

टोक्यो ओलंपिक में चमके भारतीय सितारे

नवंबर-दिसंबर, 2021 के पर्व-त्योहार

सोमवार	01 नवंबर	रमा एकादशी
मंगलवार	02 नवंबर	धनतेरस
बुधवार	03 नवंबर	रूप चतुर्दशी
गुरुवार	04 नवंबर	दीपावली
शुक्रवार	05 नवंबर	अन्नकूट/ बेसतुबरस
शनिवार	06 नवंबर	भाईदूज
मंगलवार	09 नवंबर	लाभ पंचमी
बुधवार	10 नवंबर	सूर्य पष्ठी
सोमवार	15 नवंबर	देव प्रबोधिनी एकादशी
शुक्रवार	19 नवंबर	गुरुनानक जयंती/देव दीपावली
मंगलवार	30 नवंबर	उत्पत्ति एकादशी
गुरुवार	09 दिसंबर	सूर्य पष्ठी
मंगलवार	14 दिसंबर	मोक्षदा एकादशी/गीता जयंती
शनिवार	18 दिसंबर	दत्तात्रेय जयंती/पूर्णिमा व्रत
शनिवार	25 दिसंबर	क्रिसमस
गुरुवार	30 दिसंबर	सफला एकादशी

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

विशिष्ट सामयिक चिंतन

दिलों को जगमग करे दीवाली

दीपों की जगमगाहट के साथ जीवन को मिठास से भर देने की परंपरा का नाम ही दीपावली है। रोशनी के इस महापर्व की तैयारी भी शुरू हो चुकी है तो क्यों न इस बार रोशनी के पर्व की शुरुआत घर का अँधेरा मिटाने के अलावा मन का अँधेरा दूर करने से ही की जाए। इस बार उपहार के बहाने खुशियाँ बाँटी जाएँ। क्यों न इस बार मुँह के साथ जिंदगी को भी मीठा कर दें? क्यों न इस बार दीपों की जगमगाहट की तरह नई सोच को जीवन से जोड़ दिया जाए ताकि खुशियों को बाँटने की परंपरा जीवन में त्योहार की तरह बस जाए।

सवाल कई हैं और उनके जवाब भी हमारे पास हैं, हमारे खुद के पास; क्योंकि जब तक हम जिंदगी में कुछ सकारात्मक नहीं करेंगे, तब तक जीवन का अँधेरा सदा के लिए दूर करना मुश्किल है। हम इससे जीत नहीं सकते, इसलिए इस बार एक नई शुरुआत करते हैं; अँधेरे को हमेशा के लिए दूर करने की। घर की सफाई यदि हमने कर ली मगर कूड़ा मुहल्ले के किसी चौराहे पर फेंक आए तो उससे तो परेशानी कई गुना बढ़ जाती है। हमें सोचना चाहिए कि इससे वहाँ रहने वाले लोगों को परेशानी होती है। इसलिए कचरे का सही तरीके से प्रबंधन करना सीखें।

यदि हमारे शहर-मुहल्ले में कूड़े का निस्तारण सही ढंग से नहीं हो रहा है तो इसकी शिकायत स्थानीय प्रशासन से करें और खुद भी सोचें कि कचरे का प्रबंधन कैसे हो? इस बार कोशिश करें कि गंदगी घरों से ही नहीं, बल्कि सड़कों व शहरों से भी दूर हो। एक स्वच्छ माहौल तैयार हो और खुशियों के आने का रास्ता पूरी तरह साफ हो।

एक रिपोर्ट के मुताबिक दीपावली के समय घरों से सामान्य दिनों की तुलना में 25-30 प्रतिशत ज्यादा कूड़ा निकलता है। इसमें आतिशबाजी, घर की सफाई के बाद निकला कूड़ा और एकदूसरे को दिए जाने वाले उपहारों को पैक करने में इस्तेमाल होने वाले कागज और पॉलिथीन का एक बड़ा हिस्सा होता है।

हर बार की तरह कोई कोना रोशनी से न बचने पाए, यह तो जरूर सोचा होगा। इस बार हमें यह भी सोचना चाहिए कि कहीं कोई कूड़ा-कचरा गंदगी को न बढ़ा रहा हो, साथ ही कोई हृदय अँधेरे से भरा न रहे यह भी हमें सोचना चाहिए।

इस बार रोशनी की जगमगाहट को हृदय से जोड़े रखिए, ताकि जीवन भर यह जगमगाहट हर कोने के साथ हर हृदय तक पहुँचे। सभी व्यक्तियों के साथ मुक्त हृदय से मिलिए। हृदय खोलकर मिलिए। मिठाइयाँ तो हर साल बँटती हैं, इस बार से खुशियों को बाँटने की परंपरा को और ज्यादा मजबूत और सशक्त बनाइए। सगे-संबंधी-रिश्तेदारों और आस-पास के लोगों के बीच खुशियाँ इतनी बाँटी जाएँ कि घर से बाहर तक खुशियों का माहौल इस बार लंबे वक्त के लिए ठहर जाए। इस बार खुशियों को बाँटने में कोई कंजूसी नहीं हो; यह सोचकर हम दीपावली का त्योहार मनाएँ।

मिठास जबान पर हो तो मन अच्छा हो जाता है और दिलों में हो, तो जिंदगी खूबसूरत। तो क्यों न इस बार जिंदगी को मीठा कर दिया जाए—प्रेम की बोली से, मनचाही कुछ बातों से, दुःख-सुख बाँटने के कुछ अच्छे लम्हों से; क्योंकि यह मिठास का ऐसा धागा है जो जीवन में न सिर्फ मिठास ही घोलेगा, बल्कि दिलों को भी जोड़े रखेगा।

शिकागो यूनिवर्सिटी के द्वारा विगत दिनों किए गए एक शोध अध्ययन के अनुसार, अकेलेपन की समस्या इन दिनों पूरी दुनिया में बहुत तेजी से बढ़ रही है। इनमें सिर्फ बुजुर्ग ही नहीं, युवा वर्ग के लोग भी शामिल हैं। अकेलेपन की समस्या गाँवों की तुलना में शहरों में ज्यादा बढ़ रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट की मानें तो भविष्य में अवसाद और तनाव भविष्य के विश्व में दूसरे सबसे बड़े रोग होंगे। ऐसे में मानसिक रोगियों की बढ़ती संख्या भारत ही नहीं, बल्कि विश्व भर में चिंता का बड़ा विषय है। अब हमको तय करना है कि रिश्तों को कैसे खुशियों की रोशनी से जगमग करें।

इसके साथ ही हम ये भी सोचें कि सबसे बढ़कर अगर कोई उपहार है तो वह है जरूरत में काम आने वाली चीज। इसलिए इस बार उन घरों में भी झाँकिए, जहाँ अँधेरा तो है मगर जरूरतें भी मौजूद हैं। हो सकता है हमारा कोई उपहार उन जरूरतों को पूरा न करे। मिठाइयाँ तो सभी बाँटते हैं, इस बार जरूरतमंदों की जरूरत के मुताबिक उपहार बाँटिए। फिर इसकी जरूरत चाहे हमारे अपने घर के बुजुर्गों को हो, छोटों को या फिर आस-पास के माहौल में किसी को क्यों न हो; इस बार एक दीया जिंदगी की नई शुरुआत के नाम हमें जलाना ही चाहिए।

नई शुरुआत जीवन की उन उलझनों को कहीं पीछे छोड़कर हो, जो लंबे समय से रुकी हुई हैं। नई शुरुआत उन रिश्तों की भी होनी चाहिए, जिन पर उदासी का रंग चढ़ गया है, ताकि एक नई उम्मीद के साथ फिर से जिया जा सके। दीपों का यह त्योहार भले ही किसी एक धर्म से संबंधित हो, लेकिन यह भी सच है कि इसकी जगमगाहट न सिर्फ देश के अलग-अलग राज्यों में ही दिलों को जगमग करती रही है, बल्कि विश्व के कई देशों में भी दीपों का यह उत्सव मनाया जाता रहा है। हालाँकि भारतीय दीपावली एकता के रंगों से जगमग होती रही है। इस सिलसिले को बनाए रखने के लिए और घर के माहौल के साथ पूरे परिवेश को खुशियों से भरने के लिए इसमें प्रेम की मिठास को घोलते रहना जरूरी है, ताकि विविधताओं से भरे इस देश में हमेशा मनती रहे 'एकता की दीपावली।'

दीपावली पर होने वाली आतिशबाजी से सड़कों पर कूड़ा बढ़ता है व साथ ही ध्वनि और वायु प्रदूषण भी काफी बढ़ जाते हैं। अमेरिका के वॉशिंगटन यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ मेडिसिन में हुए एक शोध में यह बात सामने आई है कि वायु प्रदूषण के कारण मानवीय स्वास्थ्य एवं रोगप्रतिरोधक क्षमता को नुकसान होता है। इसके अलावा वायु प्रदूषण हृदय और फेफड़े जैसे अन्य अंगों को भी नुकसान पहुँचाता है। ऐसे में जब दीपावली में पटाखे छोड़े जाएँगे तो सबके स्वास्थ्य का क्या हाल होगा, इसका अंदाजा हम लगा सकते हैं। बच्चों को भले ही आतिशबाजी, पटाखों का शौक हो मगर इसके साथ अपने छोटों को यह भी बताना चाहिए कि दीपावली इससे बढ़कर भी बहुत कुछ है।

बात चाहे आस-पास के वातावरण को साफ बनाए रखने की हो या फिर दूसरों का ख्याल रखने की—बच्चे परिवार की परंपरा को आगे बढ़ाने का अहम जरिया हैं, इसलिए जरूरी है कि उन्हें दीपावली का सही मतलब मालूम हो। उनको परिवार से मिलने-जुलने का मौका दें। त्योहार कोई भी हो, वह परिवार और समाज की समृद्धि एवं खुशहाली का संदेश देता रहा है। इसी से इसे मनाने की खुशियाँ भी मुकम्मल होती हैं। इसलिए इस बार अपने त्योहार में हर किसी को साथ जोड़ने की कोशिश की जानी चाहिए।

कोई अकेला न रह जाए, इसलिए पास-पड़ोस के लोगों से मिलते रहने का बहाना ढूँढ़िए। एक रिपोर्ट के मुताबिक दीपावली के आस-पास अस्पतालों में दमा, एलर्जी, हृदयरोगी, आँख-कान के रोग, ब्रोंकाइटिस और आग से जलने के रोगियों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हो जाती है। सिर्फ इसलिए कि इस समय लोग घरों में रंग-रोगन, तोड़-फोड़ व मरम्मत आदि करवाते हैं। इस सफाई से निकलने वाली गंदगी और हानिकारक गैस हवा में जहर घोलने का काम करती हैं। रही-सही कसर आतिशबाजी से निकलने वाला धुआँ पूरी कर देता है। इससे बुजुर्ग व कम प्रतिरक्षा वाले लोग सबसे ज्यादा प्रभावित होते हैं।

दीपावली से पूर्व सड़कों और कूड़ेदानों में वार्षिक सफाई के नाम पर कचरों के ढेर लगा दिए जाते हैं— क्या यह सही है? छोटी दीपावली यानी नरकचतुर्दशी को लेकर अवधारणा है कि इस दिन घर का सारा टूटा-फूटा सामान, कूड़ा-कचरा जरूर बाहर कर देना चाहिए, अन्यथा लक्ष्मी जी की कृपा प्राप्त नहीं होती। ऐसे में प्रश्न उठता है कि पूरे साल हम लक्ष्मी की चिंता क्यों नहीं करते। सिर्फ इसी दिन की प्रतीक्षा क्यों? पूरे साल यदि घर की सफाई करते और अनावश्यक चीजों को घर से बाहर फेंकते, तो दीपावली पर सफाई कर्मचारियों को अतिरिक्त बोझ न उठाना पड़ता।

घर की सजावट के लिए प्राकृतिक फूलों के बंदनवार, शुभ दीपावली, कंडील आदि बनाएँ। इससे दीपावली पर हमारा घर प्राकृतिक एवं सकारात्मक ऊर्जा और खुशबू से महक उठेगा। आशा है इस दीपकोत्सव पर आतिशबाजी को न कहते हुए कुदरती प्रदूषणमुक्त दीपावली का त्योहार मनाकर हम रोगियों, बच्चों और बुजुर्गों की जिंदगी में उजाला भरने का नेक कार्य करेंगे, साथ ही स्वच्छ पर्यावरण अभियान में भी अपना अमूल्य योगदान देंगे। ❑

अध्यात्म का प्रथम सोपान बनें पहले अच्छे इनसान

लोग अध्यात्म के नाम पर प्राय: ध्यान, समाधि, कुंडलिनी, आत्मसाक्षात्कार, ईश्वरप्राप्ति, ब्रह्मज्ञान आदि की बातें करते रहते हैं और वैसा करना कुछ गलत भी नहीं है। इससे अपने लक्ष्य एवं मंजिल का सुमिरन होता रहता है और पगों को सही दिशा व गति मिलती रहती है, लेकिन जरूरत से अधिक इनकी चर्चा मात्र होने पर फिर धीरे-धीरे ये अपनी सार्थकता खो बैठते हैं और अनुभूतियों से रीता, कोरा बौद्धिक जाल-जंजाल ही हमारे पास शेष बचता है।

ऐसे में कुछ अध्यात्म के नाम पर भजनानंदी बन जाते हैं तो कुछ आँखें बंद कर ध्यान व मंत्रों की रटन को अध्यात्म मान बैठते हैं। कुछ माया में लिप्त, किंतु जगत् मिथ्या-ब्रह्म सत्य के ब्रह्मज्ञान की चर्चा में अध्यात्म की इतिश्री मान बैठते हैं और कुछ को कुंडलिनी जागरण से लेकर चमत्कार-सिद्धियों की चर्चा में अध्यात्म का मर्म समझ आता है।

यहाँ भक्ति, भजन, ध्यान, ब्रह्मचर्चा, कुंडलिनी जागरण आदि की बुराई नहीं की जा रही, लेकिन अध्यात्म का व्यावहारिक पक्ष समझे बिना; इसके साधना पथ के मर्म को समझे बिना कोरे वाक्विलास, बौद्धिक उछल-कूद एवं कर्मकांडीय रटन को अधूरा कहा जा रहा है। अध्यात्म के शिखर के आरोहण से पूर्व हमें इसके प्राथमिक सोपानों को पार करना होता है। ये सोपान ही आगे की यात्रा की आधारभूमि तैयार करते हैं। इन्हीं पर अध्यात्म का प्रासाद खड़ा होता है।

पहला आध्यात्मिक सोपान ध्यान-समाधि नहीं, बल्कि यम-नियम है। अपने तन-मन व स्वभाव की मूलभूत दुर्बलताओं का परिष्कार करते हुए जीवन में शांति, स्थिरता एवं संतुलन को साधना है, जो हमें अध्यात्म के उच्चतर सोपानों के लिए तैयार कर सके। यदि हम शरीर से स्वस्थ नहीं हैं; अशक्त एवं निर्बल हैं और ऊपर से आलसी भी हैं तो फिर ऐसे जीवन से कुछ अधिक आशा नहीं की जा सकती। अध्यात्म तो दूर भौतिक जगत् में भी इससे कुछ बड़ा प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं।

भारतीय मानस की नब्ज टटोलते हुए कभी स्वामी विवेकानंद ने यह कहा था कि गीता के कोरे ज्ञान से अच्छा है कि पहले हम शरीर से मजबूत बनें। अधिक पुष्ट शरीर एवं पुट्ठों के साथ हम गीता को और बेहतर समझ रहे होंगे। यही स्थिति बौद्धिक प्रमाद एवं अज्ञानता से ग्रस्त मन की है। स्वाध्याय एवं चिंतन-मनन से हीन व्यक्ति में वह बौद्धिक जिज्ञासा नहीं उभर पाती, जिससे कि वह अध्यात्म की गहरी बातों को समझ सके। ऐसे में उसके तोतारटन व अंधविश्वासी होने का खतरा अधिक रहता है और यदि कहीं हठधर्मिता भी साथ जुड़ गई तो फिर ऐसे कट्टरवाद से किन्हीं सकारात्मक परिणामों की आशा नहीं की जा सकती।

इसी तरह यदि जीवन अस्त-व्यस्त है; बेतरतीब है; दिशाहीन है तो ऐसे में अध्यात्म की चर्चा बेईमानी होगी। यदि हमारी दिनचर्या अव्यवस्थित है, जीवन की प्राथमिकताएँ स्पष्ट नहीं, अपने कर्त्तव्यपालन के प्रति हम ईमानदार नहीं तो ऐसे में समय के श्रेष्ठ एवं सार्थक उपयोग के अभाव में फिर काल के अधिपति महाकाल की आराधना मात्र कर्मकांड तक ही सीमित रहेगी।

अध्यात्म का शुभारंभ तो आत्म-अनुशासित जीवनचर्या एवं स्व-स्फूर्त नैतिकता से होता है। सेवा के नाम पर अपने संकीर्ण स्वार्थ के साधन का अध्यात्म से दूर-दूर तक कोई लेना-देना नहीं है। जो व्यक्ति अपनी दुर्बलताओं, न्यूनताओं को समझने की क्षमता खो बैठा हो, उससे अध्यात्म तो दूर; सामान्य जीवन में संतुलित व्यवहार की आशा भी नहीं की जा सकती। ऐसी मानसिकता के साथ अध्यात्म के नाम पर की जा रही वंचना से सामूहिक जीवन में किन्हीं सकारात्मक परिणामों की आशा नहीं की जा सकती; क्योंकि अध्यात्म के नाम पर स्वार्थकेंद्रित कृत्यों का सामूहिक उत्कर्ष से कोई लेना-देना नहीं होता।

स्वार्थी एवं इक्कड़ जीवन को संवेदनाशून्य एवं घोर भौतिकतावादी जीवन ही कहा जाएगा, जहाँ व्यक्ति अध्यात्म को किन्हीं क्षुद्र स्वार्थ एवं महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति का

साधन मान बैठा हो। ऐसा जीवन घोर तमस् एवं अज्ञानता का प्रतीक माना जाएगा। अध्यात्म का ऐसे हठयोग से भी अधिक लेना-देना नहीं, जहाँ कर्मकांडों की ही लकीर अधिक पीटी जा रही हो। आत्मपरिष्कार से हीन ऐसी कट्टरता, दुर्बलता को ही इंगित करती है; जबकि अध्यात्म व्यावहारिक स्तर पर परिस्थितियों के साथ स्वयं के समायोजन एवं तालमेल का नाम है।

इस तरह अध्यात्म पथ पर चलने के अभीप्सु अपनी आंतरिक दुर्बलताओं को चिह्नित कर उनसे जूझते हुए एक-एक करके इनके पार होते हैं और जीवन को सम्यक रूप में कसने व उन्हें साधने की कोशिश करते हैं। इस आधार पर ही जीवन के विविध आयाम सबल होते हैं और व्यक्तित्व के सर्वांगीण उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त होता है। जितना हम इस दिशा में आगे बढ़ते हैं, उतनी ही मात्रा में जीवन में शांति आती है; स्थिरता एवं संतुलन सधता है और हमारी आध्यात्मिक यात्रा प्रगति पथ पर अग्रसर होती है।

परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में आंतरिक परिष्कार की ओर समुचित ध्यान देना ही बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता का प्रथम चरण है। अध्यात्म का पहला शिक्षण यही है कि मनुष्य अपना स्वरूप समझे और यह सोचे कि मैं कौन हूँ, क्या हूँ और क्या बना हुआ हूँ? इस आत्मचिंतन को साधना का प्रथम सोपान कहा जाता है। यह चिंतन ईश्वर-जीव-प्रकृति की उच्च भूमिका से आरंभ नहीं किया जा सकता। कदम तो क्रमशः ही उठाए जाते हैं। नीचे की सीढ़ियों को पार करते हुए ही ऊपर को चढ़ा जा सकता है।

सोऽहम्, शिवोऽहम् की ध्वनि करने से पूर्व अपने को सच्चिदानंद मानने से पूर्व हमें साधारण जीवन पर विचार करने की आवश्यकता पड़ेगी और यह देखना पड़ेगा कि ईश्वरपुत्र जीव आज कितने दोष-दुर्गुणों से ग्रसित होकर पामरता का उद्विग्न जीवनयापन कर रहा है। माया के बंधनों ने उसे कितनी बुरी तरह से जकड़ रखा है और षड्रिपु पग-पग पर उसे कैसे त्रास दे रहे हैं।

माया का अर्थ है—वह अज्ञान, जिससे ग्रस्त होकर मनुष्य अपने को निर्दोष और सारी परिस्थितियों के लिए दूसरों को उत्तरदायी मानता है। भवबंधनों से मुक्त होने का अर्थ है—कुविचारों, कुसंस्कारों और कुकर्मों से छुटकारा पाना। अपने दोषों की ओर से अनभिज्ञ रहने से बड़ा प्रमाद इस संसार में और कोई नहीं हो सकता, जिसका मूल्य जीवन में असफलता का मुख देखने व उसका पश्चात्ताप करते हुए ही चुकाना पड़ता है।

अध्यात्म मार्ग पर पहला कदम बढ़ाते हुए साधक को सबसे पहले आत्मचिंतन की साधना करनी पड़ती है। ब्रह्मचर्य, तप, त्याग, सत्य, अहिंसा आदि उच्चतम आध्यात्मिक तत्त्वों को अपनाने से पहले उसे छोटी-छोटी त्रुटियों को सँभालना होता है। परीक्षार्थी पहले सरल प्रश्नों को हाथ में लेते हैं और कठिन प्रश्नों को अंत के लिए छोड़ रखते हैं। लड़कियाँ गृहस्थ की शिक्षा गुड़ियों के खेल से आरंभ करती हैं। युद्ध में शस्त्र चलाने की निपुणता पहले साधारण खेल के रूप में उसका अभ्यास करके ही अर्जित की जाती है। एम.ए. की परीक्षा देने के बजाय पहले प्राथमिक कक्षा, फिर मिडिल, मैट्रिक, इंटर, बी.ए. पास करते हुए एम.ए. का प्रमाण पत्र लेने की योजना बनाई जाती है।

कर्मभिर्महाभद्रिः सुश्रुतो भूत्॥ —ऋग्वेद

मनुष्य अपने सत्कर्मों से प्रसिद्ध होता है।

सुधार के लिए सबसे पहले सत्य, ब्रह्मचर्य या त्याग को ही हाथ में लेना आवश्यक नहीं है। आरंभ छोटे-छोटे दोष-दुर्गुणों के सुधार से करना चाहिए। उन्हें क्रमशः ढूँढ़ना और हटाना चाहिए। इस क्रम में आगे बढ़ने वाले को जो छोटी-छोटी सफलताएँ मिलती हैं, उनसे उनका साहस बढ़ता जाता है। उस सुधार के जो प्रत्यक्ष लाभ मिलते हैं, उन्हें देखते हुए बड़े कदम उठाने का साहस भी होता है और उन्हें पूरा करने का मनोबल भी तब तक संचित हो चुका होता है।

जो असंयम, आलस्य, आवेश, अनियमितता और अव्यवस्था की साधारण कमजोरियों को जीत नहीं सका; वह षड्रिपुओं, असुरता के आक्रमणों का मुकाबला कैसे करेगा। संत, ऋषि और देवता बनने से पहले हमें मनुष्य बनना चाहिए। जिसने मनुष्यता की शिक्षा पूरी नहीं की, वह महात्मा क्या बनेगा। अध्यात्म की यात्रा का प्रथम सोपान अच्छा इनसान बनने से ही पूर्ण होता है और उसी दिशा में चलने का प्रयत्न हमें करना चाहिए। ❑

सद्गृहस्थ की सामर्थ्य

महाभारत युद्ध के पश्चात धर्मराज युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञ का घोड़ा छोड़ा गया व साथ ही उसकी रक्षा के निमित्त बड़ी सेना और शूरवीरों के साथ धनुर्धर अर्जुन भी उसके पीछे-पीछे चले। यज्ञ का घोड़ा अनेक देशों में घूमता रहा, परंतु किसी की हिम्मत नहीं पड़ी कि अर्जुन की रक्षा में विचरते हुए धर्मराज के उस यज्ञीय घोड़े को पकड़ने की कल्पना भी कर सके। घोड़ा स्वच्छंद गति से घूमता-घामता चंपकपुरी राज्य की सीमा में जा पहुँचा। सीमा पर तैनात सैनिकों के एक दल ने उसे देखा व निकट जाकर उसकी पहचान की।

सेनापति के माध्यम से इस अवैध घुसपैठ की सूचना तत्काल महाराज हँसध्वज के समक्ष उनके राज दरबार में पहुँचाई गई। वहाँ उपस्थित राजपुरोहित शंख व लिखित समेत समस्त राजकुमारों यथा सम, सुदर्शन, सुरथ, सुबल व सुधन्वा ने भी यह सुना। कुछ विचार कर महाराज ने इस संबंध में राजपुरोहित शंख एवं लिखित से यथोचित कार्रवाई हेतु अपने-अपने सुझाव देने को कहा। पांडवों की सामर्थ्य से भली प्रकार भिज्ञ राजपुरोहित शंख एवं लिखित उनके इस धर्म-अभियान में अड़चन डालने व परिणामस्वरूप अपने राज्य को विपत्ति में डालने के पक्ष में नहीं थे, अत: महाराज से उन्होंने घोड़े को बिना किसी रोक-टोक के स्वच्छंद विचरण करने दिए जाने की सलाह दी।

इससे पूर्व कि हँसध्वज कुछ निर्णय लेते, उनकी दृष्टि अपने पुत्रों पर पड़ी। वे सभी किसी उलझन में थे। भगवान नारायण के अनन्य भक्त सभी राजकुमारों को लीलापुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन लाभ लेने का यह सुनहला अवसर प्रतीत हुआ। उन सभी ने मन-ही-मन योजना बनाई कि यदि यज्ञीय घोड़े को पकड़ा जाए तो पांडवों के धर्म-अभियान में बाधा पहुँचाने के फलस्वरूप उनसे युद्ध सुनिश्चित हो जाएगा। पांडवों की ओर से अश्व की रक्षा करने आए अर्जुन को परास्त होते देख उसकी रक्षा के लिए भगवान श्रीकृष्ण अवश्य ही वहाँ आ पहुँचेंगे।

अपनी इस योजना को जग जाहिर न करते हुए राजकुमारों ने राजपुरोहित शंख एवं लिखित के सुझाव के ठीक विपरीत घोड़े को पकड़ने व युद्ध की तैयारी किए जाने को अधिक उपयुक्त ठहराया। दोनों विरोधी मतों ने हँसध्वज को असमंजस में डाल दिया। क्षत्रिय धर्म निभाने के लिए राजकुमारों ने हँसध्वज को विवश किया। इस पर राजपुरोहित शंख ने महाराज हँसध्वज के समक्ष राजकुमारों के लिए तंज कसते हुए कहा—"महाराज! हमें अपने योद्धाओं की वीरता पर तनिक भी संदेह नहीं है, बशर्ते कि वे सभी यथासमय युद्ध में अपनी सहभागिता सुनिश्चित करने का वचन दें।"

महाराज हँसध्वज को राजपुरोहित शंख की यह बात महत्त्वपूर्ण लगी; अत: राज्य की सुरक्षा को ध्यान में लेते हुए उन्होंने राजपुरोहित शंख एवं लिखित से युद्ध के नियमों के तहत किसी भी प्रकार के राजकीय आदेश की अवज्ञा करने वाले के लिए समुचित दंड प्रावधान को तय करने के निर्देश दिए। हँसध्वज के विरुद्ध लिए गए इस बड़े फैसले व इसके फलस्वरूप आने वाले परिणाम को ध्यान में रखते हुए राज्य में घोषणा कर दी गई कि इस विषम परिस्थिति में राज्य की रक्षा के लिए जो सैनिक, सेनापति या राजकुमार भोर होते ही यथासमय रणभूमि में न पहुँचेगा, उसे दंडस्वरूप गरम तेल के कड़ाह में डाल दिया जाएगा।

ऐसे कठोर शासनादेश को सुनकर सभी योद्धा नियत समय युद्धस्थल पर पहुँचने के लिए व्यग्र हो उठे। भगवान के परम भक्त, महान शूरवीर और सद्गृहस्थ सुधन्वा भी युद्ध के लिए तैयार हो गए। वे युद्ध से पूर्व सर्वप्रथम अंत:पुर में भगवान की भावपूर्ण प्रार्थना हेतु गए, परंतु उन्हें वहाँ अपने इस उपक्रम में कुछ देर हो गई, अत: वे नियत समय पर रणभूमि में न पहुँच सके। महाराज हँसध्वज ने राजपुरोहित से युद्ध की व्यवस्था पूछी। राजपुरोहित ने कहा— "महाराज! आदेश सबके लिए समान था, अत: युद्धस्थल में विलंब से आने के लिए राजकुमार सुधन्वा को राजदंड के तहत तप्त तेल के कड़ाह में उतरना होगा।"

शासन के आदेश को सहर्ष शिरोधार्य कर भक्त सुधन्वा भगवान का नाम लेते हुए गरम तेल में कूद पड़े, किंतु भगवान की कृपा से उनका बाल भी बाँका न हुआ। इस विलक्षण घटना के साक्षी दंड आयोजकों को संदेह हुआ व उन्होंने अनुमान लगाया कि राजा ने पुत्र की रक्षा हेतु अवश्य कुछ चालाकी कर दी होगी। अत: तेल की उष्णता को मापने के लिए एक नारियल उस कड़ाह में डाला गया। नारियल गरम तेल के संपर्क में आते ही बड़े जोर से फटा और उसका एक टुकड़ा राजपुरोहित शंख के और दूसरा मुनि लिखित के मस्तक पर जा लगा। वहाँ उपस्थित लोगों को भगवद्भक्त सुधन्वा की भक्ति की महिमा समझ आई।

सुधन्वा ने सभी का अभिवादन किया व तत्काल ही युद्ध के लिए प्रस्थान किया। युद्ध में हँसध्वज के समस्त कुमारों ने पांडव पक्ष के बहुत-से योद्धाओं को परास्त कर सभी को आश्चर्यचकित कर दिया। अंत में स्वयं अर्जुन युद्ध के लिए आगे आए। सुधन्वा ने महायोद्धा अर्जुन के साथ ऐसा घनघोर युद्ध किया कि अर्जुन के छक्के छूट गए। युद्ध की विकरालता बढ़ती जा रही थी व निर्णायक स्थिति आ नहीं रही थी। महारथी अर्जुन ने भी सुधन्वा से ऐसे पराक्रम की कल्पना न की थी। अर्जुन के परम सखा भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन की अपने सभी भाइयों की मनोकामना की पूर्ति के लिए सुधन्वा ने अर्जुन को माध्यम बनाया व उन्हें उकसाते हुए कहा—"हे धनुर्धर! आप यदि बचना चाहते हैं तो अपने सारथी जनार्दन को बुलाइए।"

किंकर्त्तव्यविमूढ़ अर्जुन ने मन-ही-मन माधव का स्मरण किया। सर्वांतर्यामी प्रभु भक्त की पुकार सुनते ही तत्क्षण वहाँ आ पहुँचे और अर्जुन के रथ पर बैठ गए। भगवान श्रीकृष्ण को अपने समक्ष पाकर अर्जुन की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। भक्त सुधन्वा समेत सभी कुमार भी यह देख अपने शस्त्र छोड़कर दौड़े व भगवान की चरण वंदना करने लगे। भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन की लालसा से ही उन सभी ने यह योजना बनाई थी। उन पीतपटधारी घनश्याम के दर्शन करके सभी कृतार्थ हो गए।

भगवान श्रीकृष्ण के संरक्षण को पाकर सबल हुए अर्जुन ने सुधन्वा को युद्ध के लिए पुन: ललकारते हुए कहा—"नवयुवक! क्षत्रिय वीर होकर युद्ध से विमुख क्यों होते हो? आगे आओ! और मुझसे युद्ध करो; मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि तीन बाणों में ही मैं तुम्हारा सिर धड़ से अलग न कर दूँ तो मेरा संपूर्ण कुल नरकगामी बने।"

सुधन्वा ने भी चुनौती स्वीकार करते हुए आगे बढ़ कर कहा—"वीरवर! आप इतनी बढ़-बढ़कर बातें क्यों करते हैं? मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि आपके तीनों बाणों को काटकर न फेंक दूँ तो मुझे भी सद्गति प्राप्त न हो।" दोनों भगवान के परम भक्त थे; भगवान को दोनों का ही प्रण रखना था। जीवन-मरण का प्रसंग सामने आ खड़ा होने पर भगवान श्रीकृष्ण को अर्जुन की सहायता करनी पड़ी। उन्होंने हाथ में जल लेकर संकल्प किया कि गोवर्धन उठाने और ब्रज की रक्षा करने के पुण्य को मैं अर्जुन के बाण के साथ जोड़ता हूँ। अर्जुन द्वारा संधान किया गया आग्नेयास्त्र और भी प्रचंड हो गया, जिसे काटने का सामान्य उपचार कम पड़ रहा था सो सद्गृहस्थ सुधन्वा ने भी संकल्प किया कि एक पत्नीव्रत पालने का मेरा पुण्य भी मेरे इस अस्त्र के साथ जुड़े।

दोनों अस्त्र आकाश मार्ग में चले। दोनों ने दोनों के अस्त्र बीच में काटने के प्रयत्न किए। अर्जुन का अस्त्र कट गया और सुधन्वा का बाण आगे बढ़ा, किंतु निशाना चूक गया। दूसरा अस्त्र फिर उठाया गया। अब की बार भगवान श्रीकृष्ण ने अपना पुण्य अर्जुन के बाण के साथ जोड़ा और कहा—"ग्राह से गज को बचाने और द्रौपदी की लाज बचाने का मेरा पुण्य अर्जुन के इस बाण के साथ जुड़े।"

दूसरी ओर सदाचारी सुधन्वा ने भी वैसा ही किया और कहा—"मैंने नीतिपूर्वक ही उपार्जन किया है और चरित्र के किसी पक्ष में त्रुटि नहीं आने दी हो तो वो पुण्य मेरे इस अस्त्र के साथ जुड़े।" इस बार भी दोनों अस्त्र आकाश में जा टकराए और सुधन्वा के बाण से अर्जुन का बाण आकाश में ही कटकर धराशायी हो गया। तीसरा अस्त्र और शेष था। इसी पर अंतिम निर्णय निर्भर था।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—"मेरे बार-बार अवतार लेकर धरती का भार उतारने का पुण्य अर्जुन के इस बाण के साथ जुड़े।" दूसरी ओर परमार्थी सुधन्वा ने कहा—"यदि मैंने स्वार्थ का क्षण भर भी चिंतन किए बिना मन को निरंतर परमार्थ में निरत रखा हो तो मेरा पुण्य मेरे इस बाण के साथ जुड़े।" इस बार भी सुधन्वा का बाण ही विजयी हुआ। उसने अर्जुन का बाण काट दिया। दोनों पक्षों में से कौन अधिक समर्थ है—इसकी जानकारी देवलोक तक पहुँची तो समस्त

देवगण सद्गृहस्थ सुधन्वा पर आकाश से पुष्प बरसाने पहुँचे। पराजित अर्जुन के शोक का ठिकाना न रहा। अपनी प्रतिज्ञा को पूरी न हुई देख वे अत्यंत दु:खी हुए।

भगवान श्रीकृष्ण की लीला ने अब एक नया मोड़ लिया—कटे हुए बाण की नोक स्वयं उठी और उसने भक्त सुधन्वा का सिर धड़ से अलग कर दिया। वह सिर आकाश मार्ग से उड़कर भगवान श्रीकृष्ण के श्रीचरणों में आ गिरा। भगवान श्रीकृष्ण ने उसे बड़े आदर से उठाया। उसमें से एक ज्योति निकलकर भगवान के शरीर में लीन हो गई।

इस प्रकार भक्तभयहारी भगवान ने अपने दोनों ही भक्तों की प्रतिज्ञाएँ पूरी कीं। युद्ध समाप्त कर दिया गया, किंतु सुधन्वा की सामर्थ्य व भगवान श्रीकृष्ण की सुधन्वा पर हुई इस अहैतुकी कृपा को देख अर्जुन अचंभित व उलझन में पड़े थे। अर्जुन की मनोदशा को भली भाँति जानते योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण उनकी ओर देख मुस्कराए व उनकी उलझनों का समाधान करते कहने लगे—"पार्थ! चकित न हो; यही सद्गृहस्थ की वास्तविक सामर्थ्य है।"

सद्गृहस्थ की आत्मीयता का दायरा क्रमश: बढ़ता ही जाता है। अकेले से पति-पत्नी दो में, संबंधियों में, पड़ोसियों में, गाँव, प्रांत-प्रदेश, राष्ट्र और विश्व में यह आत्मीयता क्रमश: बढ़ती है। अंतत: समस्त जड़-चेतन में आत्मभाव फैल जाता है और अंत में जीव पूर्णतया आत्मसंयमी हो जाता है। गृहस्थयोग की यह छोटी-सी सर्वसुलभ साधना जब अपनी विकसित अवस्था तक पहुँचती है तो आत्मा परमात्मा बन जाती है और पूर्णता की प्राप्ति होती है।

सद्गृहस्थ की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाने लगे कि गृहस्थ एक विशिष्ट स्तर की साधना है, जिसमें योगी जैसी प्रज्ञा और तपस्वी जैसी प्रखर प्रतिभा का परिचय देना पड़ता है। कलाकार अपने आप को साधता है, किंतु गृहस्थ को एक समूचे समुदाय के विभिन्न प्रकृति और स्थिति के लोगों का निर्माण करना पड़ता है।

यह कार्य सघन आत्मीयता, समग्र दूरदर्शिता और समर्थ तत्परता से ही संभव हो सकता है। इसके लिए धरती जैसी सहनशीलता, पर्वत जैसा धैर्य-धारण और सूर्य जैसी प्रखरता का समन्वय सँजोना पड़ता है। पूरी निष्ठा और सही ढंग से साधा गया गृहस्थ धर्म किस प्रकार फलता है, यह तो तुमने अभी देख ही लिया। सद्गृहस्थ की सामर्थ्य को जानकर महारथी अर्जुन ने भी स्वयं को कृतकृत्य अनुभव किया। ❑

एक साँप को क्रोध के आवेश ने घेरा। उसने फन फैलाकर गरजना और फुफकारना आरंभ किया और कहा—"मेरे जितने भी शत्रु हैं, आज उन्हें मैं खाकर ही छोड़ूँगा; उनमें से एक को भी जिंदा न रहने दूँगा।" मेंढ़क, चूहे, केंचुए और छोटे-छोटे जानवर उसके उस गुस्से को देखकर डर गए और छिपकर देखने लगे कि आखिर होता क्या है? क्रोध के आवेश में साँप दिन भर फुफकारता रहा और दुश्मनों पर हमला करने के लिए दिन भर इधर-उधर बेतहाशा भागता रहा। फुफकारते-फुफकारते उसके गले में दरद होने लगा। शत्रु तो कोई हाथ आया नहीं, पर कंकड़-पत्थरों की खरोंचों से उसकी सारी देह जखमी हो गई; शाम को चकनाचूर होकर वह एक तरफ जा बैठा। क्रोध करने वाला शत्रुओं से पहले स्वयं को ही नुकसान पहुँचाता है। अनावश्यक आवेश अंतत: दु:ख ही पहुँचाता है।

दीपोत्सव पर्व

दृष्टिकोण के परिवर्तन का पर्व

एक सेठ का व्यापार काफी फल-फूल रहा था। वे अन्न का व्यापार किया करते थे। व्यापार में उन्हें खूब मुनाफा होता, पर फिर भी वे और अधिक मुनाफा कमाने की जुगत-जुगाड़ में लगे रहते। जीवन में उन्होंने कभी किसी को दान में कुछ दिया हो—ऐसा शायद ही किसी ने देखा या सुना था। वे अमीरी से अधिक अपनी कंजूसी और कृपणता के लिए जाने जाते थे। गाँव में साधु-संत, फकीर या कोई अभावग्रस्त व्यक्ति यदि उनके पास जाते तो वे प्राय: निराश होकर ही वापस लौट आते।

दीपावली का त्योहार था। गाँव के लोग इसकी तैयारियाँ पूरे जोर-शोर से कर रहे थे। धन-संपदा में वृद्धि व समृद्धि के लिए लोग अपने-अपने तरीके से माँ लक्ष्मी का पूजन कर रहे थे। सेठ ने भी माता लक्ष्मी का पूजन किया। संयोग से उस दिन वहाँ एक सिद्ध महात्मा पधारे। महात्मा जी के आगमन की खबर पूरे गाँव में ही नहीं, वरन आस-पास के गाँवों में भी फैल गई। गाँव के मूर्द्धन्य लोगों ने उनके सत्संग की व्यवस्था की। हजारों लोग सत्संग हेतु वहाँ एकत्रित हुए। सेठ जी भी भीड़ देखकर वहाँ आ पहुँचे।

ऐसे प्रसंगों में सेठ जी को वैसे तो कोई दिलचस्पी नहीं थी, पर उन्होंने सुना कि महात्मा जी के आशीर्वाद से व्यक्ति अधिक संपन्न बन सकता है। अस्तु उनके मन में यह विचार आया कि क्यों न अधिक मुनाफा कमाने का कोई मंत्र या आशीर्वाद माँग लें? यही सोचकर वे कुछ समय के लिए वहाँ सत्संग में बैठ गए। महात्मा जी लोगों को मानव जीवन की गरिमा समझाते हुए कह रहे थे कि चौरासी लाख योनियों में मनुष्य को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है; क्योंकि शुभ कर्म के द्वारा वह सुखी जीवन जी सकता है और गुरु व भगवान की पूजा-उपासना के द्वारा वह इसी जीवन में सद्गति प्राप्त कर सकता है।

महात्मा जी आगे बोले—"मनुष्य जीवन में ही व्यक्ति आत्मकल्याण, लोक-कल्याण तथा भगवद्प्राप्ति के लिए प्रयास-पुरुषार्थ कर सकता है; क्योंकि अन्य योनियों में ऐसे कर्म कर पाना संभव नहीं है, पर यह दुर्भाग्य ही है कि मनुष्य जीवन पाकर भी अनेक व्यक्ति भगवद्प्राप्ति के बजाय अपना सारा समय धन-संपदा और भोग-पदार्थों को अर्जित करने में ही बिता देते हैं। जब व्यक्ति इस संसार से जाता है तो उसे खाली हाथ ही जाना पड़ता है। उसके सभी सगे-संबंधी, रिश्तेदार, धन-संपदा सब यहीं छूट जाते हैं।"

वे बोले—"जब अंत समय आ जाता है तो व्यक्ति यह सोचकर दु:खी होता है कि मनुष्य जीवन निरर्थक चला गया और वह पश्चात्ताप व आत्मग्लानि से भरा इस संसार से विदा हो जाता है। इसके विपरीत जो ईश्वर की शाश्वतता को सदा ध्यान में रखते हैं और तदनुरूप जीवन जीते हैं, वे अपने शुभ कर्मों के कारण अपने जीवन को सुखी बनाते हैं और आत्मकल्याण के मार्ग को भी प्रशस्त करते हैं। ऐसे लोग इस संसार से जाते हुए भी अपनी आत्मा में परम आनंद की अनुभूति करते हैं और सद्गति को प्राप्त होते हैं।"

महात्मा जी ने कहा—"ईश्वर सर्वव्यापी हैं, अस्तु वे हमारे प्रत्येक कर्म के साक्षी हैं। प्रेम से वे प्रकट होते हैं। जिसके हृदय में जैसी भक्ति और प्रीति होती है; प्रभु वहाँ उसके लिए सदा उसी रीति से प्रकट होते हैं।" मानव जीवन की गरिमा पर प्रकाश डालने के पश्चात महात्मा जी कुछ देर के लिए मौन हुए थे कि तभी सेठ बोल पड़े—"महात्मा जी! आपने मानव जीवन के ऊपर तो बड़ा ही सुंदर प्रकाश डाला, पर आज माँ लक्ष्मी की पूजा का दिन है। यदि आप उन्हें प्रसन्न करने का कोई उपाय बता सकें तो आपकी बड़ी कृपा होगी।"

महात्मा जी सेठ के मनोभाव समझ गए व मुस्कराते हुए बोले—"शास्त्रों में लक्ष्मी पूजा के अनेक विधि-विधान बताए गए हैं। पर मैं आपको माता लक्ष्मी को प्रसन्न करने का एक सरल उपाय बताता हूँ—आप सभी जानते हैं कि लक्ष्मी जी समुद्रमंथन से निकली थीं। यहाँ समुद्रमंथन पराक्रम, पुरुषार्थ का ही प्रतीक है। जो पराक्रम करता है, पुरुषार्थ करता है, उसके जीवन में लक्ष्मी जी अवश्य प्रकट होती हैं। माँ लक्ष्मी सदा भगवान विष्णु के साथ रहती हैं। वे भगवान विष्णु की पत्नी के रूप में जानी जाती हैं, पर क्या कभी

आपने विचार किया कि जहाँ भगवान विष्णु हैं, वहीं लक्ष्मी जी हैं—ऐसा क्यों है?''

कारण स्पष्ट करते हुए महात्मा जी स्वयं ही कहने लगे—''ऐसा इसलिए है; क्योंकि भगवान विष्णु इस जगत् के पालनकर्त्ता हैं। उनमें जगत् के पालन-पोषण व कल्याण की भावना एवं प्रवृत्ति है, इसलिए उनके साथ लक्ष्मी जी अर्थात समृद्धि है। जिस व्यक्ति में परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व व संपूर्ण मानवता के कल्याण की भावना है; जिसमें स्वयं के साथ-साथ औरों का पालन-पोषण करने की प्रवृत्ति है; उसी व्यक्ति के जीवन में समृद्धि आती है अर्थात माँ लक्ष्मी आती हैं। यदि व्यक्ति में परहित की प्रवृत्ति है तो ऐसे व्यक्ति के जीवन में समृद्धि आती है और जहाँ समृद्धि है—वहीं सुख है, वहीं शांति है, पर यह समृद्धि भौतिक ही नहीं आत्मिक भी है।''

महात्मा जी अपने आशय को स्पष्ट करते हुए बोले—''जो लोग दान-परोपकार में, दूसरों के पीड़ा-निवारण में अपनी धन-संपदा का सुनियोजन करते हैं, उनकी भौतिक व आत्मिक समृद्धि में अभिवृद्धि होती है, पर जो लोग सिर्फ स्वयं व अपने परिवार मात्र के लिए जीते हैं, ऐसे लोगों के जीवन में समृद्धि नहीं टिकती। ऐसे लोग धन-संपदा होते हुए भी दरिद्रता की अनुभूति करते हैं, शांति की नहीं। आनंद तो औरों के लिए जीने में है।''

वे आगे बोले—''माँ लक्ष्मी की पूजा में कमलपुष्प अर्पित किए जाने का सांकेतिक संदेश यही है कि जैसे जल में रहकर भी कमल जल से अछूता रहता है, ठीक वैसे ही हम भी संसार में रहते हुए संसार से निर्लिप्त रहें। धन-संपदा रहते हुए भी उससे निर्लिप्त रहें, अनासक्त रहें। वैसे ही, जैसे जल में कमल। कमल कीचड़ में खिलता है। कठिनाइयों में भी व्यक्ति को हिम्मत नहीं हारनी चाहिए, बल्कि उनका बहादुरीपूर्वक सामना करते हुए कमल की तरह खिलते रहना चाहिए; क्योंकि जहाँ पुरुषार्थ व श्रमशीलता है; वहीं समृद्धि है।''

महात्मा जी ने कहा—''**कराग्रे वसते लक्ष्मीः** का अर्थ है कि हमारे हाथ के अग्र भाग में लक्ष्मी बसती हैं। हम अपने हाथ से पुरुषार्थ करें तो लक्ष्मी अवश्य आएँगी। यदि व्यक्ति में अकर्मण्यता, आलस्य, प्रमाद आदि प्रवृत्तियाँ हों तो उसके जीवन में समृद्धि आ ही नहीं सकती। दीपावली में माँ लक्ष्मी के साथ श्री गणेश की पूजा का भी विधान है। श्री गणेश 'विवेक' के प्रतीक हैं। जहाँ विवेक है, वहीं समृद्धि है और जहाँ समृद्धि है, वहीं सुख है और वहीं आनंद है। धन के अपव्यय से समृद्धि का नाश होता है। अस्तु धन अर्जित करने के साथ-साथ धन का व्यय करते समय भी व्यक्ति में विवेक का होना आवश्यक है। तभी उसके जीवन में समृद्धि टिक सकती है। दीपावली दीपों का पर्व है। घी के दीये जलाने के साथ-साथ अपनी आत्मा में ज्ञान के दीये को भी हमें जलाना चाहिए।''

सेठ जी के प्रश्नोत्तर के साथ ही महात्मा जी ने अपनी वाणी को विराम दिया। महात्मा जी के संदेश को सुनकर वहाँ बैठे सभी लोग आत्ममंथन कर रहे थे। उनमें से लगभग प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा लग रहा था मानो महात्मा जी ने उनकी आँखें खोल दी हों। धर्म, अध्यात्म, पूजा-उपासना की ऐसी व्यावहारिक व्याख्या सुनकर सबके अंतःचक्षु खुल गए और उस दिन से सभी एक नई दृष्टि के साथ जीवन जीने के प्रयास-पुरुषार्थ में लग गए और देखते-देखते उनका जीवन बदलने लगा।

महात्मा जी की बातें सुनकर सेठ जी ने सोचा कि यदि महात्मा जी का यह सत्संग मुझे पहले प्राप्त हो गया होता तो आज मैं आत्मिक दृष्टि से भी संपन्न होता। मेरे जीवन के बहुमूल्य क्षण मात्र धन-उपार्जन में ही बीत गए, पर आत्मकल्याण के विषय में मैंने न तो कभी विचार किया और न ही कुछ कर सका। उनकी आँखें पश्चात्ताप के आँसुओं से भर आईं और उन्होंने तत्क्षण श्रेष्ठ जीवन जीने का संकल्प किया। फिर वे ईमानदारीपूर्वक पुरुषार्थ करने लगे और नित्य भगवद्भजन, स्मरण, ध्यान में समय लगाने लगे तथा संतों का सत्संग व स्वाध्याय भी करने लगे।

धन-संपदा की तो उन्हें कमी थी ही नहीं और अब वे अभावग्रस्त, जरूरतमंद लोगों की मदद भी करने लगे। ऐसा करते-करते उनकी चित्तशुद्धि होने लगी। फलस्वरूप भौतिक प्रगति के साथ-साथ उनकी आत्मिक-आध्यात्मिक प्रगति भी होने लगी। उन्हें हर पल अपार शांति, उल्लास व आनंद की अनुभूति होने लगी। जो सेठ जी अपनी कृपणता व कंजूसी के लिए जाने जाते थे, वे अब अपनी उदारता व भगवद्भक्ति के लिए जाने जाने लगे। सत्य ही है कि जीवन-दृष्टि बदलते ही सृष्टि बदल जाती है। दीपावली का पर्व हमारे दृष्टिकोण को बदलने का और उसे कल्याण के मार्ग पर निरत करने का पर्व है। ❑

बच्चों में बोएँ सद्गुणों के बीज

अँगरेजी साहित्य के प्रसिद्ध कवि विलियम वर्ड्सवर्थ की 'माई हार्ट लिप्स अप' नामक कविता की एक प्रसिद्ध पंक्ति है—'दि चाइल्ड इज दि फादर ऑफ मैन'। इसका अर्थ है—बच्चा आदमी का पिता होता है या यों कहें कि बच्चा मनुष्य का पिता होता है। इस उक्ति के माध्यम से कवि यह कहना चाहते हैं कि एक बच्चे में ही भविष्य का मनुष्य आकार लेता है। बचपन में व्यक्ति की जो भी, जैसी भी आदतें होती हैं, भविष्य में उसी प्रकार के मनुष्य का निर्माण होता है।

वे इस कविता में स्वयं अपने बचपन की आदतों का जिक्र करते हुए कहते हैं कि मैं बच्चे के रूप में इंद्रधनुष को देखकर बेहद आनंदित महसूस करता था और एक वयस्क के रूप में मैं अभी भी उसे देखकर उसी आनंद का अनुभव करता हूँ और भविष्य में भी उसे देखकर मुझे वैसी ही खुशी प्राप्त हो सकेगी। यदि ऐसा न हुआ तो मेरी मौत ही हो जाएगी। दरअसल कवि ने इस कविता में बचपन की आदतों, संस्कारों एवं व्यवहारों का मनुष्य पर पड़ने वाले प्रभावों का जिक्र किया है।

सचमुच जैसे एक छोटे से बीज में भविष्य का वृक्ष छिपा होता है, वैसे ही एक बच्चे में भविष्य का मनुष्य छिपा होता है। यदि बीज उन्नत किस्म का है तो उसका असर उस बीज से निकलने वाले वृक्ष पर पड़ेगा ही। सही जलवायु पाकर एक बीज से ही विराट वटवृक्ष निकल आता है। वैसे ही एक छोटे से, नन्हे से नौनिहाल में, बच्चे में से एक विराट व्यक्तित्व बाहर निकल आता है।

एक नन्हे से नौनिहाल में ही भविष्य का वैज्ञानिक, चिकित्सक, अभियंता, अध्यापक, अभिनेता, नेता आदि छिपा होता है। एक नन्हे से बच्चे में ही स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद, महर्षि अरविंद, रमण महर्षि, युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव जैसे विराट व्यक्तित्व बैठे होते हैं, जो भविष्य में प्रकट होते हैं, जो भविष्य में अपने विराट स्वरूप में प्रकट होते हैं, प्रस्तुत होते हैं। उसी प्रकार बचपन में बुरी आदतों, बुरे संस्कारों के धनी बच्चों को देखकर भी उनके अंदर छिपे भविष्य के मनुष्य का आकलन सहज ही होने लगता है।

बच्चा एक ऐसी कली की तरह से है, जो हजारों संभावनाओं का प्रतीक है। जैसे कली में फूल का भाग्य निहित होता है, वैसे ही भविष्य का मनुष्य अपने बचपन में ही आकार लेने लगता है। बचपन वयस्क के व्यक्तित्व को पहले से दरसाता है अर्थात बचपन भविष्य के मनुष्य को दिखाता है, वैसे ही जैसे सुबह दिन को दिखाती है। एक बच्चे का आचरण और व्यवहार उस बच्चे के अंदर विकसित हो रहे भविष्य के मनुष्य को दिखाता है।

इस प्रकार एक वयस्क मनुष्य—बचपन की आदतों, विचारों, संस्कारों, मनोभावों आदि का परिणाम है, जिसे वह बचपन से ही विकसित करने लगता है। एक बच्चे के रूप में विलियम वर्ड्सवर्थ इंद्रधनुष जैसी हर चीज का आनंद लेते थे और एक वयस्क के रूप में, एक आदमी के रूप में, एक मनुष्य के रूप में उन्होंने उसी उत्साह और जोश के साथ इंद्रधनुष का आनंद लिया, प्रकृति का आनंद लिया।

अस्तु व्यक्ति जो भी बचपन में सीखता है, वह उसके साथ तब तक रहता है, जब तक वह जीवित रहता है। वह ज्ञान, आदतें, दृष्टिकोण, स्वभाव और व्यवहार जो एक व्यक्ति एक वयस्क के रूप में प्रदर्शित करता है, वास्तव में वे सब बचपन से ही उसके द्वारा आत्मसात् की जाने लगती हैं।

दुनिया के महानतम वैज्ञानिकों, साहित्यकारों, संगीतकारों, गायकों, योगियों, दार्शनिकों के जीवन पर दृष्टिपात करने पर उनके भविष्य की झलक स्वयं ही मिलने लगती है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद, महर्षि रमण, परमपूज्य गुरुदेव आदि महायोगियों, दार्शनिकों के बचपन की आदतें, व्यवहार, दृष्टिकोण आदि सामान्य बालकों से सर्वथा भिन्न रहे हैं। योग, ध्यान आदि आध्यात्मिक क्रियाओं में उनकी गहरी अभिरुचि उनके बचपन से ही परिलक्षित होने लगी थी।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव बचपन से ही हिमालय को अपना घर बताते थे और वहाँ जाने की जिद भी करते

थे। ऐसा इसलिए क्योंकि पूर्वजन्म के दिव्य संस्कारों के कारण व्यक्ति के बचपन से ही वे गुण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। उन दिव्य गुणों, संस्कारों को विकसित होने के लिए बस, उपयुक्त वातावरण की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार पूर्वजन्म के बुरे संस्कारों के कारण भी व्यक्ति बुरी आदतों, व्यवहार, दृष्टिकोण व विभिन्न प्रकार की बुराइयों के प्रति सहज ही आकर्षित होने लगते हैं। साथ ही बुरी संगति के कारण भी बच्चे बुरी आदतें सीखने लगते हैं।

ऐसी स्थिति में बच्चों को ऐसे वातावरण की आवश्यकता होती है, जिसमें वे बुरी आदतों के प्रति आकर्षित न हो सकें। साथ ही उनमें अच्छी आदतों, संस्कारों के बीज बोए जा सकें। यह बिलकुल वैसा ही है, जैसे उर्वर भूमि में बीज सहज ही उग आते हैं, पर बंजर भूमि में ऐसा संभव नहीं होता। अत: उस बंजर भूमि को विशेष प्रयास से उर्वर बनाना होता है। उसी प्रकार एक अभिभावक को भी एक कुशल किसान की तरह बच्चों की बंजर मनोभूमि को उर्वर बनाकर उसमें सद्गुणों व शुभ संस्कारों, आदतों, अभ्यासों के बीज बोने पड़ते हैं और उसकी सिंचाई व देख-भाल करनी पड़ती है।

एक कुम्हार के हाथ में यदि गीली मिट्टी है तो वह उस मिट्टी को चाहे जो भी आकार, रूप दे सकता है। उस मिट्टी को वह स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद की मूर्ति का रूप दे सकता है। उस मिट्टी को वह देवता या दानव कोई भी रूप प्रदान कर सकता है, पर मिट्टी के सूख जाने पर ऐसा कर पाना कहाँ संभव हो पाता है। बच्चा भी गीली मिट्टी के समान है। उसे मनचाहा आकार देना हो तो उसके बचपन में ही उसमें शुभ भावनाओं, विचारों, संस्कारों के बीज बोए जाने चाहिए। उसमें ईमानदारी, जिम्मेदारी, समझदारी और बहादुरी के बीज बोए जाने चाहिए। उसको करुणा, प्रेम, सेवा, संवेदना आदि मानवीय भावों को कहानियों, कथाओं, कविताओं, सत्संग, स्वाध्याय, वृत्तचित्रों व स्वयं के आचरण से भरा जाना चाहिए।

घर-परिवार के लोगों का आचरण कैसा है? इसका बच्चों पर विशेष असर पड़ता है। परमपूज्य गुरुदेव ने कहा है कि वाणी की अपेक्षा आचरण से दिया गया उपदेश अधिक प्रभावशाली होता है। जो हम बच्चों को सिखाते हैं उस पर बड़े स्वयं चलने लग जाएँ तो यह धरती स्वर्ग बन सकती है। बच्चों को यदि महानतम योगियों, दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, देशभक्तों, क्रांतिकारियों की आत्मकथाएँ, जीवनियाँ, नैतिक कहानियाँ आदि बचपन से ही सुनाई व दिखाई जाएँ तो उनके ऊपर निश्चित ही इनका अच्छा असर पड़ेगा।

उन्हें बचपन से ही गीता, रामायण, महाभारत, उपनिषद्, पुराण आदि ग्रंथों के प्रेरक प्रसंग सुनाए जाने चाहिए। इसे ही बच्चों में शुभ संस्कारों, विचारों, आदतों, व्यवहारों के बीज बोना कह सकते हैं। यही बीज आगे चलकर वृक्ष बन सकेंगे, वटवृक्ष बन सकेंगे। उदाहरण के लिए भारत के महानतम वैज्ञानिक व मिसाइलमेन के नाम से मशहूर भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ0 एपीजे अब्दुल कलाम ने बचपन में अपने पिता से ईमानदारी व समय की पाबंदी के गुण सीखे थे और उन्हीं गुणों ने उन्हें भविष्य में महान बनाया।

इसी प्रकार महान योद्धा शिवाजी ने कम उम्र में ही अपनी माँ से वीरता व सच्चरित्रता के गुण सीखे थे, जिसके कारण वे महान बन सके। ऐसे महान लोगों के उदाहरणों से इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। एक बार आचार्य चाणक्य कहीं जा रहे थे कि तभी उनकी नजर कुछ खेलते हुए बच्चों पर पड़ी। उन छोटे बच्चों में एक बच्चा ऐसा था, जो खेल में अन्य सभी बच्चों का नेतृत्व कर रहा था। वह एक शासक की तरह बच्चों को आदेश दे रहा था। चाणक्य ने उस बच्चे में भविष्य के एक कुशल शासक को पहचान लिया। बड़े होने पर वही बालक चंद्रगुप्त मौर्य के नाम से विख्यात हुआ।

बच्चे गुलाब की तरह पूरी तरह खिल सकें, इस हेतु हमें एक कुशल माली की भूमिका निभानी चाहिए। हमें उनकी सही देख-भाल करनी चाहिए। हमारी एक आँख सुधार की तो दूसरी दुलार की होनी चाहिए। हमें उन्हें खिलने का पूरा अवसर व वातावरण प्रदान करना चाहिए। परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में कहें तो ऐसा हम बच्चों के शासक बनकर नहीं, अभिभावक बनकर ही कर सकते हैं। एक कुशल मूर्तिकार की तरह, हम अपने बच्चों को मनचाहा रूप प्रदान कर सकते हैं। बच्चों के मित्र बनकर ही हम उन्हें मनचाहा आकार दे सकते हैं। बच्चों में दिव्य संस्कारों, विचारों का उनके जीवन पर कितना व्यापक असर होता है, इसको लेकर एक रोचक कहानी आती है।

अपनी बहन इलाइजा के साथ एक किशोर बालक घूमने निकला। रास्ते में उन्हें एक किसान की लड़की

मिली। वह सिर पर अमरूदों से भरी टोकरी लिए उन्हें बेचने बाजार जा रही थी। इलाइजा ने भूल से उस लड़की को टक्कर मार दी, जिससे उसके सारे अमरूद गिर गए और गंदे हो गए। कुछ फूट गए, कुछ में कीचड़ लग गया। वह गरीब लड़की रो पड़ी। 'अब मैं अपने माता-पिता को जाकर क्या खिलाऊँगी, उन्हें अब कई दिनों तक भूखा रहना पड़ेगा।'

इस प्रकार अपनी दीनता, लाचारी, उदासी व्यक्त करती हुई वह अमरूद वाली लड़की रो रही थी। इस पर इलाइजा ने कहा—''भैया! चलो हम लोग भाग चलें। यदि कोई आ गया तो हमें मार पड़ेगी और हरजाना भी देना होगा। अभी तो यहाँ कोई है नहीं, अभी तो यहाँ कोई देख भी नहीं रहा। चलो जल्दी भाग चलें।''

इस पर उसका भाई बोला—''बहन! देख ऐसा मत कह। जब लोग ऐसा मान लेते हैं कि यहाँ कोई नहीं देख रहा, तभी तो पाप होते हैं। जहाँ मनुष्य स्वयं उपस्थित है, वहाँ एकांत कैसा? उसके अंदर बैठी हुई आत्मा ही गिर गई तो फिर ईश्वर भले ही दंड न दे वह आप ही मर जाता है। गिरी हुई आत्माएँ ही संसार में कष्ट भोगती हैं, इसे तू नहीं जानती, मैं जानता हूँ।''

इतना कहकर उस बालक ने अपनी जेब में रखे सभी तीन आने पैसे उस गरीब लड़की को दे दिए और उससे कहा—''बहन! तू मेरे साथ चल। हमने गलती की है तो उसका दंड भी हमें सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। तुम्हारे फलों का पूरा मूल्य घर चलकर चुका दूँगा।'' तीनों घर पहुँचे। बालक ने सारी बातें माँ को सुनाईं।

माँ ने एक तमाचा इलाइजा को जड़ा और दूसरा उस लड़के को और गुस्से में बोली—''तुम लोग नाहक घूमने क्यों गए? घर खरच के लिए पैसे नहीं हैं, अब यह दंड कौन भुगतेगा?'' इस पर लड़के ने कहा—''माँ! मेरे जेब खरच के पैसे आप इस लड़की को दे दीजिए। मेरा दोपहर का विद्यालय का नाश्ता बंद रहेगा, मुझे उसमें रत्ती भर भी आपत्ति नहीं है। अपनी गलती के लिए प्रायश्चित भी तो मुझे ही करना चाहिए।''

माँ ने उसके डेढ़ महीने के जेब खरच के पैसे उस लड़की को दे दिए। लड़की प्रसन्न होकर अपने घर चली गई। डेढ़ महीने तक विद्यालय में उस लड़के को खाने को नहीं मिला, पर इस पर उसने अप्रसन्नता प्रकट नहीं की। अपनी मानसिक त्रुटियों पर इतनी गंभीरता से विजय पाने वाला यही बालक आगे चलकर विख्यात शासक नेपोलियन बोनापार्ट के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इस कथा का सार-संदेश यही है कि हम स्वयं के साथ-साथ बच्चों में शुभ संस्कारों, विचारों, आदतों के बीज बोते रहें। उनमें शुभ भावनाएँ भरते रहें। उनमें दिव्य गुणों के बीज बोते रहें। एक-न-एक दिन वे बीज उनके भीतर से वृक्ष बनकर, वटवृक्ष बनकर अवश्य ही प्रकट होंगे; जिससे वे स्वयं निहाल तो होंगे ही व औरों को भी नई रोशनी, नई राह दिखा सकेंगे। ❑

भूखे-प्यासे साधु के मन ने साधु को उकसाते हुए कहा—''काया को कष्ट क्यों देते हो? किसी घर में भीख माँग लो।'' साधु अभी उस ओर मुड़ने ही वाले थे कि आत्मा मन की इस अज्ञानता का विरोध करती बोली—''रुको! जिससे माँगोगे, वह भी तो तुम्हारे जैसा ही होगा। तुम स्वयं ही कुछ अर्जित क्यों नहीं कर लेते?'' अपनी झूठी दलील प्रस्तुत करते हुए साधु के मन ने साधु को फुसलाते हुए पुनः कहा—''तुम तपस्वी हो, अपरिग्रही हो, तुम्हें कमाना नहीं चाहिए।'' मन के इस कुतर्क को काटते हुए आत्मा ने समझाया—''जो अपरिग्रह, परिग्रह का दास हो, उससे अच्छा परिग्रह ही है, जो कम-से-कम हाथ तो नहीं फैलाता।'' साधु को आत्मा की बात विवेकपूर्ण लगी, जिसे धारण कर उसने उस दिन से साधना-उपासना के साथ स्वावलंबी जीवन का अभ्यास भी आरंभ कर दिया।

ब्रह्मांड में व्याप्त प्राण-ऊर्जा

ब्रह्मांड प्राणतत्त्व की प्रचुरता से ओत-प्रोत है। प्राणियों एवं वनस्पतियों के जीवन का मूल आधार यही तत्त्व है। श्रुति कहती है कि प्राणतत्त्व को समझने और उस पर नियंत्रण प्राप्त करने से प्रकृति के समस्त रहस्यों को जाना भी जा सकता है और अनुभव भी किया जा सकता है। प्राणवान व्यक्तियों के पीछे न केवल मनुष्य चलते हैं, वरन् प्रकृति की सारी शक्तियाँ भी उसकी अनुगामिनी होती हैं।

'बियोन्ड कोइन्सिडेन्स' नामक अपनी कृति में मूर्द्धन्य वैज्ञानिक व मनीषी डॉ० एलेक्स टेनस इस तथ्य की पुष्टि करते हुए लिखते हैं कि मेरी मान्यता है कि विश्व-ब्रह्मांड में एक सर्वव्यापी प्राण-ऊर्जा संव्याप्त है, जिसे अभी तक वैज्ञानिक उपकरणों से जाना नहीं जा सका है। जब तक उसे जानने के उपकरण उपलब्ध नहीं होते, तब तक पारिस्थितिक प्रमाण या आनुभविक प्रमाणों के आधार पर हमें ज्ञान एकत्रित करते रहना चाहिए। साथ ही जिस तरह से रेडियो और टी०वी० जैसे उपकरणों के कन्डेन्सर बिजली को संघनित करते हैं; ठीक वैसे ही हम भी उस ऊर्जा को धारण कर वांछित दिशा में प्रगति कर सकते हैं।

डॉ० एलेक्स टेनस के अनुसार—मनुष्य में उसकी प्राण-ऊर्जा का प्रभाव उसके शील, व्यक्तित्व, शिक्षा, रुचि, शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों एवं वातावरण के अनुसार भिन्न-भिन्न हुआ करता है। इस ऊर्जा का नाम उन्होंने सी०पी०ई० अर्थात रचनात्मक-बोधात्मक ऊर्जा रखा है। स्वामी विवेकानंद ने इसे ही 'साइकिक फोर्स' कहा है। उनका संकेत समष्टि मन की सर्वव्यापक क्षमता की ओर था, जिसके प्रभाव से डॉ० एलेक्स टेनस ने अतींद्रिय क्षमता का विकास कर लिया था।

उनके अनुसार यह ऊर्जा व्यक्ति के अंतराल में प्रसुप्त अवस्था में विद्यमान रहती है, जिसे प्रयत्नपूर्वक साधनात्मक उपायों के द्वारा जाग्रत एवं विकसित किया जाता है। इसके जागरण से मनुष्य भूत, वर्तमान एवं भविष्य से संबंध स्थापित कर सकता है और उसे स्थान एवं काल का बंधन भी तब बाँध नहीं सकते हैं।

यह तभी संभव हो पाता है, जब व्यक्ति रचनात्मक-बोधात्मक ऊर्जा से ओत-प्रोत होता है। प्राय: देखा जाता है कि कई व्यक्ति बाहर से एक जैसे लगने पर भी कोई साहसपूर्ण कदम नहीं उठा पाते, जबकि स्वास्थ्य, शिक्षा, साधन एवं उपयुक्त अवसर न होने पर भी दूसरे आदमी दुस्साहस भरे कदम उठाते और आश्चर्यचकित करने वाली सफलताएँ प्राप्त करते देखे गए हैं। प्राय: हम इस तथ्य से अनभिज्ञ बने रहते हैं और यह जानने का प्रयत्न नहीं करते हैं कि वह कौन-सा तत्त्व है, जो किसी व्यक्ति को प्रभावी बनाता है। उत्तर में यही कहा जा सकता है कि ऐसे व्यक्ति प्राणशक्ति से परिप्लावित होते हैं।

कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि वह व्यक्ति एक समय उस ऊर्जा के घनिष्ठ संबंध में है तो अन्य समय में नहीं भी होता है। जब व्यक्ति में प्राणशक्ति की न्यूनता होती है तब वह व्यग्र, व्यथित, चिड़चिड़ा और परेशान नजर आता है। यदि बार-बार यह स्थिति उत्पन्न होती है तो व्यक्ति दु:खी और कदाचित् तंत्रिका तंत्र का रोगी भी हो जाता है। जब वह प्राण-ऊर्जा से परिपूर्ण होता है तो वह आत्मविश्वासी, सुखी, क्रियाशील और अपने से संतुष्ट हुआ करता है। यदि ऐसा व्यक्ति साधनारत रहते हुए सदैव उस ऊर्जा के संग्रहण एवं संवर्द्धन में संलग्न रहता है तो वह प्रत्यक्ष क्षेत्र में भी सफलता प्राप्त करता हुआ चला जाता है।

अनुसंधानकर्त्ता अध्यात्मवेत्ताओं के अनुसार प्राणाधिक्य या सी०पी०ई० वाले लोग सर्वसाधारण की अपेक्षा अधिक प्रतिभावान एवं शक्तिसंपन्न हुआ करते हैं। इस प्रकार विपुल शक्ति के माध्यम से एलेक्स जैसे लोग अतींद्रिय क्षमताओं से संपन्न होते हैं। अघटित घटनाओं का पूर्वानुमान लगाने, बीमारियाँ दूर करने, स्थूलशरीर से बाहर निकलकर आउट साइड बॉडी होने के अनुभव लेते हुए व्यक्तियों या वस्तुओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेना आदि अतींद्रिय बोध कर सकते हैं, लेकिन इस प्रकार की क्षमता से सदैव युक्त रहा जाए, यह आवश्यक नहीं।

यदा-कदा ऐसे व्यक्ति इस क्षमता से वंचित भी हो जाया करते हैं। जैसे कोई उत्तम वादक या उत्तम चित्रकार अधिकांश प्रसंगों में दूसरों की अपेक्षा कहीं अच्छा गायन या चित्रकारी कर लेता है, परंतु कभी-कभी उसकी यह क्षमता लड़खड़ा भी जाती है। विज्ञान के क्षेत्र में जिस तरह से नए-नए अनुसंधान हो रहे हैं, उसी तरह से विज्ञानवेत्ता अब प्राणचेतना के क्षेत्र में भी ऐसी खोज करने के लिए प्रयासरत हैं।

मानवीय अंतराल में निहित अतींद्रिय क्षमताओं यथा अतींद्रिय संबोधी एक्स्ट्रा सेंसरी परसेप्सन, टेलीपैथी, क्लेयरवॉयेंस, साइकोकाइनेसिस जैसी क्षमताओं की परिपुष्टि में अनेक सफल प्रयोग व परीक्षण किए गए हैं।

इन प्रयोगों एवं प्रमाणों के आधार पर वैज्ञानिक मनीषियों को यह मानने के लिए बाध्य होना पड़ा है कि मनुष्य मात्र हाड़-मांस का पुतला नहीं है, वरन उसके अंतराल में प्राणचेतना का सागर हिलोरें मार रहा है। अतींद्रिय क्षमताएँ तो उसकी एक झलक-झाँकी मात्र हैं।

भारतीय तत्त्वदर्शी ऋषि-मनीषियों ने कठिन योग-साधनाओं एवं तपश्चर्या के आधार पर इस तथ्य को हजारों वर्षों पूर्व ही जान लिया था और उपार्जित ज्ञानभंडार एवं आत्मशक्ति से जन-कल्याण एवं समाजोत्कर्ष में सफल हुए थे। आज भी ऋषिप्रणीत वह मार्ग सबके लिए खुला हुआ है। ❑

शंकराचार्य ने पाँच-सात वर्ष की उम्र में ही विद्या में प्रवीणता हासिल कर ली थी। ज्ञानप्राप्ति के उपरांत उनमें वैराग्य का भाव जागा। अतः संन्यास लेने के लिए उन्होंने अपनी माता से आज्ञा माँगी। पति के असमय ही स्वर्गवास होने व पुत्र शंकर के एकमात्र सहारे को देख माँ ने पुत्र को इस त्याग हेतु स्पष्ट रूप से इनकार कर दिया। इधर शंकर भी अपनी माँ को कष्ट देकर संन्यास नहीं लेना चाहते थे। शंकर के इस आग्रह की बात को अरसा बीत गया। एक दिन माता के साथ वे नदी में स्नान करने गए। स्नान करते समय एक मगर ने शंकर को पकड़ लिया। पुत्र पर प्राणों का संकट आया देख माता के होश उड़ गए। वे मदद की पुकार लगाने लगीं। शंकर ने माता से निवेदन किया—"माता! यदि मुझे संन्यास लेने की आज्ञा आप दें तो संभवतः यह मगर मुझे छोड़ दे।" किंकर्त्तव्यविमूढ़ माँ कुछ नहीं बोलीं। शंकर ने पुनः से निवेदन किया—"देखो माँ, मगर वैसे भी मुझे खा ही जाएगा, सेवा तो नहीं कर सकूँगा। ऐसे में उत्तम है कि आप मुझे शिव को दान कर दें। नहीं बचूँगा तो भी आपको शिव को दान देने का पुण्य ही मिलेगा और यह भी तो हो सकता है कि शिव का स्वत्व मानकर मगर मुझे छोड़ ही दे।" माँ ने तुरंत आज्ञा दे दी और माया से जन्मे मगर ने शंकर को छोड़ दिया। इस तरह माँ से सहर्ष अनुमति लेकर शंकर आठ वर्ष की उम्र में ही घर से निकल पड़े। चलते वक्त माँ ने कहा—"बेटा! तुम जाओ; परंतु हो सके तो मेरी मृत्यु के समय तुम मेरे पास ही रहना। मेरा अंतिम संस्कार तुम ही करना।" मातृभक्त शंकर माँ की मृत्यु के समय संन्यास के नियमों को तोड़कर उन्हीं के समीप रहे।

ब्रह्मसूत्र के भाष्यकारों की दृष्टि में ब्रह्म एवं जगत्

ब्राह्मणों और आरण्यकों की सुविख्यात मान्यताओं का सूत्रीकरण वेदांत सूत्रों के रूप में किया गया है। महर्षि व्यास ने उपनिषदों के सार को पुराणों के अंतर्गत उन आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारों के रूप में संकलित किया जो स्मार्त प्रस्थान तथा नारायणीय धर्ममूलक वैष्णव प्रस्थान श्रीमद्भागवत आदि के रूप में परिणत हुए। वे ही एक ऐसे महर्षि कोटि के व्यास थे, जिन्होंने ब्रह्मसूत्र के समान अत्यंत महत्त्वपूर्ण वेदांत दर्शन पर महान ग्रंथ की रचना की।

ब्रह्मसूत्र पर समय-समय पर अनेक भाष्य लिखे गए तथा वर्तमान में 11 भाष्य उपलब्ध हैं। ब्रह्मसूत्र पर वैष्णव संप्रदाय के 12वीं शताब्दी के आचार्य रामानुज के विचारों को विशिष्टाद्वैत के नाम से जाना जाता है। आचार्य शंकर के अद्वैतवाद के प्रतिवाद के रूप में विशिष्टाद्वैत का प्रचार एवं प्रसार हुआ। विशिष्टाद्वैत के आचार्यों की ब्रह्मविषय धारणा शंकराचार्य की अपेक्षा अतिशय उदार प्रतीत होती है। यह दर्शन चित् (जीव), अचित् (प्रकृति) एवं ईश्वर से विशिष्ट होने के कारण ही विशिष्टाद्वैत कहलाया।

जीव एवं प्रकृति तो क्रमशः चित् एवं अचित् तत्त्व हैं, ईश्वर अंशी से ही अंश हैं। दोनों में सेवक स्वामी का संबंध है। जीव ईश्वर के अधीन है, ईश्वर स्वतंत्र है। विशिष्टाद्वैत में ब्रह्म एवं ईश्वर में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। ब्रह्म से ही जगत् उत्पन्न होता है और ब्रह्म में ही लीन हो जाता है।

इस दर्शन का आधार ज्ञान, कर्म एवं भक्ति है। विशिष्टाद्वैत दर्शन में जगत् उतना ही सत्य है, जितना कि ईश्वर। रामानुजाचार्य के अनुसार जिसमें बृहत्तर गुण हो, वही ब्रह्म है। बृहत्त्व का अर्थ है—स्वरूप और गुणों का अतिरेक। निखिल दोषों से रहित, असंख्य कल्याण-गुणों से युक्त, सर्वेश्वर पुरुषोत्तम ही 'ब्रह्म' शब्द का अभिधेय है और वही 'जिज्ञासा' का कर्मभूत है।

ब्रह्मशब्देन स्वभावतो
निरस्तनिखिलदोषोऽनवधिकातिशया-
संख्येयकल्याणगुणगणः
पुरुषोत्तमोऽभिधीयते सर्वत्र
बृहत्तवगुणयोगेन ब्रह्मशब्दः।
बृहत्तवं च स्वरूपेण गुणैश्च
यत्रानवधिकातिशयं सोऽयं मुख्योऽर्थः।
स च सर्वेश्वर एव।
अतः सर्वेश्वरो जिज्ञासाकर्मभूतं ब्रह्म।

रामानुजाचार्य के अनुसार ब्रह्म सत्य है। वस्तुतः ब्रह्म निष्फल, निष्क्रिय, शांत, निरवद्य और निरंजन है अर्थात ब्रह्म शब्द का तात्पर्य ही है समस्त दोषों से रहित, समस्त कल्याणकारी गुणों का आगार पुरुषोत्तम। यही ब्रह्म जब माया से आच्छन्न हो जाता है, तब ईश्वर कहलाता है। जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय का कारण यही ईश्वर है।

वेदांत में स्थूल, सूक्ष्म, चित्, अचित् सभी परब्रह्म के शरीर हैं और सभी का कारण ब्रह्म है तथा जीव उसका कार्य है। जीव की तरह ही ब्रह्म को शरीरी कहा गया है। अतः जीव के समान सुख-दुःख आदि भोगों में अनिवार्य रूप से आसक्त होगा। शरीरी जीवों में शरीरगत विकारों के होते हुए भी धातु वैषम्य से सुख-दुःख होते देखा जाता है।

श्रुति के अनुसार—

न ह वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति
अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः॥

ब्रह्म के अतिरिक्त संपूर्ण जगत् कार्यरूप होने से मिथ्या है।

ऐतदात्म्यमिदं सर्वतत्सत्यम
नेहनानास्ति किंचन् मृत्योः स मृत्युमाप्नोति
य इह नानेवपश्चति।

यह सारा जगत् ब्रह्मात्मक है। वह ब्रह्म ही सत्य है। इस ब्रह्म एवं जगत् में कोई भेद नहीं है। जो लोग इसमें भेद देखते हैं, वे बार-बार मृत्यु को प्राप्त होते हैं। ब्रह्म ही जीव भाव से समस्त शरीरों में जीवत्व की अनुभूति करते हैं, इसलिए वे तो मिथ्या हो ही नहीं सकते।

वस्तुतः जीव ब्रह्म से भिन्न तो है नहीं, इसलिए वह स्वभाव से विशुद्ध है फिर भी कृपाणादि में प्रतिबिंबित मुख में जैसे मलिनता आदि दोष दिखते हैं, वैसे ही विशुद्ध जीव

में भी दोष आरोपित होते हैं, इसलिए उसकी काल्पनिक अविद्याश्रयता भी होती है।

प्रतिबिंबगत मलिनता आदि की तरह जीवगत दोष भी भ्रांति मात्र ही है और यदि ऐसा न हो तो जीव की कभी मुक्ति हो ही नहीं सकती। जीव और ब्रह्म का स्वाभाविक भेद है। शारीरिक भेद धातु वैषम्य के कारण जो जीव को सुख-दुःखादि का अनुभव होता है; उसके लिए शरीरी होना कारण नहीं है, अपितु पुण्य-पाप रूप कर्म ही उसका कारण हैं।

रामानुजाचार्य ने सृष्टि को ब्रह्म की भाँति ही सत्य माना है। सृष्टि या जगत् का उपादान कारण ब्रह्म है। उनके मतानुसार सृष्टि और प्रलय से तात्पर्य ब्रह्म के स्थूल एवं सूक्ष्म रूपापन्न होने से है। सृष्टि तथा प्रलय केवल सापेक्ष हैं और उसी एक ब्रह्मरूपी कारणात्मक तत्त्व का द्योतन करते हैं।

आचार्य रामानुज ने श्रीभाष्य में कहा है—

अतः सर्वावस्थं ब्रह्म चिद्चिद् वस्तु शरीरमिति सूक्ष्म चिद्चिद् वस्तुशरीरं ब्रह्मकारणं, तदेव ब्रह्म स्थूल चिद्चिद् वस्तुशरीरं जगदाख्यं कार्यमितः।

प्रलयकाल में विषयों के अभाव में जीव और जगत् दोनों सूक्ष्मरूप धारण कर लेते हैं। उस समय ब्रह्म इन सूक्ष्म जीव व जगत् से (चित् तथा अचित्) से विशिष्ट रहता है। सृष्टि दशा में ये दोनों व्यक्त रूप अर्थात स्थूलरूप धारण कर लेते हैं। फलतः इस अवस्था में ब्रह्म स्थूल चित् तथा अचित् से विशिष्ट रहता है। तात्पर्य यह है कि उत्पत्ति, स्थिति और विनाशशील होते हुए भी जगत् सत्य ही है।

डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने रामानुज की सृष्टि संबंधी धारणा के विषय में लिखा है—जब प्रभु की इच्छा से सृष्टि की रचना प्रारंभ होती है, तब प्रकृति सूक्ष्म अवस्था से स्थूल अवस्था में परिणत हो जाती है और आत्माएँ उन भौतिक शरीरों में प्रविष्ट हो जाती हैं, जो उन्हें उससे पूर्व के जन्मों में किए गए पुण्य या पापकर्मों के अनुसार प्राप्त होते हैं। इस प्रकार आत्माओं तथा प्रकृति के संपर्क से मुक्त ब्रह्म व्यक्त होकर कार्यावस्था में आ जाता है।

डॉ० उमेश मिश्र के अनुसार—पहले महत् की उत्पत्ति होती है, इससे अहंकार उत्पन्न होता है। जिसके तीन भेद हैं—वैकारिक, तैजस्य और भूतादि। वैकारिक और भूतादि से छह ज्ञानेंद्रियाँ (मन सहित) और कर्मेंद्रियाँ उत्पन्न होते हैं। आर० जी० भंडारकर के अनुसार—सृष्टि से पूर्व परमात्मा का शरीर सूक्ष्मरूप में उपस्थित रहता है तथा सृष्टि के समय यह विद्यमान जगत् के रूप में विकसित होता है।

इस संदर्भ में डॉ० दासगुप्ता का विचार है—कार्य, कारण की केवल बदली हुई अवस्था है और इसीलिए जड़ और जीव रूप में प्रकट जगत् जो ईश्वर की देह है, इसे केवल इसलिए कार्य माना है। यह कार्य रूप में प्रकटावस्था के पूर्व ईश्वर में सूक्ष्म और निर्मल अवस्था में विद्यमान था।

स्पष्ट है कि श्री रामानुजाचार्य कार्य की सत्ता कारण में निहित मानते हैं। रामानुजाचार्य की सृष्टिविषयक धारणा को डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन एवं डॉ० दासगुप्ता दोनों ने ही सत्कार्यवाद आधारित माना है। रामानुजाचार्य सत्कार्यवाद के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। प्रत्येक कार्य यह संकेत करता है कि उसका उपादान (भौतिक) कारण पहले से विद्यमान था।

आचार्य वल्लभ ने ब्रह्म को सविशेष माना है। उनके अनुसार सविशेष श्रुतियाँ सोपाधिक या अपर ब्रह्म का नहीं, अपितु मुख्य तौर पर ब्रह्म का प्रतिपादन करती हैं। वे ब्रह्म की कोई उपाधि नहीं स्वीकार करते, अतः ब्रह्म के औपाधिक रूप या धर्म संबंधित कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। ब्रह्म 'सर्ववेदान्तप्रत्यय' अर्थात समस्त वेदों का अर्थभूत है। अनेक रूपों का निरूपण करने वाली श्रुतियों से उसका ही ज्ञान होता है।

अनेकरूपनिरूपकैः सर्ववेदान्तैः प्रत्ययो ज्ञानं तत्तथा।

आचार्य वल्लभ ने विशुद्ध ब्रह्म को ही उपास्य माना है तथा सविशेष और निर्विशेष दोनों ही श्रुतियों को ब्रह्मपरक माना है। इन द्विविध श्रुतियों के आग्रह पर विशुद्ध ब्रह्म का स्वरूप सविशेष और विरुद्धधर्माश्रय सिद्ध होता है—**अचिन्त्यानन्तशक्तिमान** और **सर्वभवनसमर्थ** ब्रह्म के स्वरूप में श्रुति के द्विविध कथन कोई विरोध उत्पन्न नहीं करते—

न च विरुद्धवाक्यानां श्रवणात् तन्निद्रधारार्थं विचारः। उभयोरपि प्रामणिकत्वेनैक तरनिद्रधारस्याशक्यत्वात् अचिन्त्यानन्तशक्तिमति सर्वभवनसमर्थे ब्रह्मणि विरोधाभावाच्च।

आचार्य वल्लभ के अनुसार ब्रह्म को निर्द्धर्मक नहीं माना जा सकता है। धर्मरहित मानने पर तो वह अनुपास्य, अप्राप्य और असफल हो जाएगा।

निर्द्धर्मकत्वे
सर्वेषामनुपास्योऽप्राप्योऽप्राप्योऽफलश्च स्यात्।

आचार्य वल्लभ ने अस्थूल आदि वाक्यों में लौकिक धर्मों का निषेध कर ब्रह्म की लोक से विलक्षणता बताई है। श्रुति सर्वत्र लौकिक का निषेध और अलौकिक का विधान करती है। इस प्रकार **जगद्वैलक्षण्य** अर्थात ब्रह्म की जगत् से भिन्नता होने से ब्रह्म में लौकिक धर्मों का ही निषेध मानना चाहिए। तत्प्रकारकस्वरूप धर्मों का नहीं है।

तथा च जगद्वैलक्षण्यबोधनेने
तत्प्रकारका धर्मा निशिध्यन्ते,
न तु तत्सदृशाः स्वरूपधर्मा
अपि अणुभा।

ब्रह्मजिज्ञासा से ब्रह्म तत्त्व की जिज्ञासा होने पर 'जन्माद्यस्य यतः' से उसका जो लक्षण प्रस्तुत किया गया है वह भी जगत्कर्तुत्वादिरूप ही है, इसलिए ब्रह्म में अप्राकृत दिव्य गुणों की स्वीकृति श्रुति के सर्वथा अनुकूल है।

आचार्य वल्लभ के अनुसार ब्रह्म परस्पर विरुद्ध धर्मों का आश्रय है। वह एक ही साथ परस्पर विरुद्ध धर्मों का ही आश्रय बन सकता है, इसलिए उसे अनंतमूर्ति कहते हैं। वह एक साथ विरोधी गुणों और क्रियाओं का आश्रय है, अतः उसे युक्ति से नहीं जाना जा सकता है। वह आत्मतत्त्व चित् रूप है। यह चित्रूपता परिस्थितिजन्य आगंतुक धर्म नहीं है, अपितु ब्रह्म का स्वभाव ही है। उनके अनुसार ब्रह्म केवल ज्ञान ही नहीं, अपितु ज्ञानवान भी है।

वह सत्, चित् और आनंदस्वरूपभूत धर्म है—

सच्चिदानन्द स्पमिति।
ब्रह्ममेति धर्मिनिर्देशः परब्रह्मवाचकः।

वह अक्षर ब्रह्म पुरुषोत्तम का अधिष्ठान है। अतः प्रतिष्ठास्वरूप भी है। आनंद ब्रह्म का धर्म है; अतः 'आनंद' पद से गुणी अर्थात ब्रह्म का निर्देश किया जाता है—

यदप्युक्तं निर्विशिष्टं
ब्रह्मात्र विवक्षितमिति तदप्युक्तम्।
आनन्दगुणस्य ब्रह्माणो विवक्षितत्वात्।
एतएवोत्तरत्र केवलेन
गुणवचनेन गुणी निर्दिश्यते।

वह जीव का संस्कर्त्ता लब्धव्य या प्राप्य रूप है। अतः उसे सर्वथा अचिंत्य अचाक्षुष और वाङ्मनसागोचर नहीं माना जा सकता। वह साकार तो है, परंतु सशरीर नहीं है। वह हिरण्य अर्थात आनंदमयत्व स्वरूपवाला है, 'आनन्द एवं ब्रह्मणि रूपस्थानीयः।' उन्होंने यथा अवसर परमसत्ता को पुरुषोत्तम, भगवान, ब्रह्म, परमात्मा, श्रीकृष्ण, श्रीहरि आदि विभिन्न नामों से संबोधित किया है। ब्रह्म सर्वात्मक है, अतः गुणों की भी आत्मा है, गुणों का सर्जक है। गुण ब्रह्मात्मक हैं, ब्रह्म गुणात्मक नहीं हैं। ब्रह्म में किसी प्रकार के भेद की शंका नहीं करनी चाहिए। वह एक अखंड और पूर्ण सत्ता है।

आचार्य वल्लभ 'जन्माद्यस्य यतः' तथा 'शास्त्रयोनित्वात्' इन दो सूत्रों को एक सूत्र मानकर यह अर्थ करते हैं कि इस जगत् का उद्भव, स्थिति और विनाश जिससे होता है; वह ब्रह्म है; शास्त्र (वेद) इस विषय में प्रमाण हैं—

शास्त्रे योनिः शास्त्रयोनिः
शास्त्रोक्तकारणत्वादित्यर्थः।

ब्रह्म का कार्य अलौकिक है; क्योंकि वह देहादि अभ्यासजन्य नहीं है। ब्रह्म सृष्टि का कर्त्ता होने के साथ-साथ उसका अभिन्ननिमित्तोपादान कारण भी है। जिस प्रकार लता अपने जाल का निमित्त कारण भी है और उपादान कारण भी; उसी प्रकार ब्रह्म भी इस प्रपंच का उपादान कारण और निमित्त कारण दोनों ही हैं।

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्।
नान्यत् किंचन मिषत्।
सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्

इत्यादि केवल ब्रह्म का ही सत्यत्व प्रतिपादित करती है। ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई तत्त्व है ही नहीं, अतः ब्रह्म से भिन्न किसी वस्तु का उपादान निमित्तकारणत्व है ही नहीं।

जगतः समवायि स्यात् तदेव च निमित्तकम्।
काचिद्भमते स्वस्मिन् प्रपंचेऽपि क्वचित्सुखम्॥

आचार्य वल्लभ सृष्टि को ब्रह्म का वास्तविक परिणाम मानते हैं; जो आभासवाद या प्रतिबिंबवाद के सर्वथा विपरीत है। वल्लभ सृष्टि का प्रयोजन लीला ही स्वीकार करते हैं। जिस प्रकार संसार में राजा आदि मृगया करते हैं, मांसाहरण अथवा अन्य किसी प्रयोजन से नहीं, अपितु केवल मनोरंजन

मात्र के लिए उसी प्रकार ब्रह्म भी लीला के लिए इस सारे प्रपंच का विस्तार करते हैं। वल्लभ के अनुसार उपाधिरहित ब्रह्म ही सृष्टि के कर्त्ता हैं और कर्त्ता का स्वतंत्र होना आवश्यक है। ब्रह्म ही तंतुनाभ की तरह इस सृष्टि का अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं। साधारण कारण भी वही हैं। यह सृष्टि ब्रह्म का वास्तविक परिणाम है, अत: ब्रह्म की ही भाँति सत्य और पारमार्थिक है। ❑

वैकुंठलोक में विराजमान भगवान विष्णु को ध्यानमग्न देखकर देवर्षि नारद ने देवी लक्ष्मी से उनका मनोभाव जानना चाहा। देवी लक्ष्मी नारद को संबोधित करके कहने लगीं—"देवर्षि! वे भूलोक स्थित अपने सबसे बड़े भक्त की उपासना कर रहे हैं।" यह सुन देवर्षि नारद बड़े आहत हुए। अपने से भी बड़े भक्त को देखने को व्यग्र वे तत्काल ही भूलोक चले गए। भगवान विष्णु के सबसे प्रिय भक्त की परीक्षा लेने के उद्देश्य से वे उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ के विषय में देवी लक्ष्मी ने उन्हें बताया था। वहाँ उन्हें पशु-चर्मों से घिरा एक मैला-कुचैला व्यक्ति दिखाई दिया। वह पसीने में लथपथ चमड़े की सफाई में मग्न था। तीव्र दुर्गंध के कारण वे उसके पास तो न जा सके, परंतु उनको यह विचित्र लगा कि यह व्यक्ति भगवान का प्रिय भक्त होगा। उनके मन में जिज्ञासा जाग्रत हुई कि क्यों न इस व्यक्ति की दिनचर्या का निरीक्षण किया जाए। वे दूर खड़े नाक पर हाथ लगाए उसके कार्यों को ध्यानपूर्वक देखने लगे। चमड़े के ढेर को साफ करते-करते शाम हो गई। देवर्षि ने सोचा, संभवत: अब यह किसी मंदिर में जाएगा या अपने निवास पर ही भगवान का नामस्मरण करेगा, पर उसने ऐसा कुछ भी नहीं किया। अंतर्मन में बड़ी अपेक्षा लिए प्रतीक्षारत देवर्षि के क्रोध की सीमा न रही। वे सोचने लगे कि यदि यह अधम मुझसे श्रेष्ठ है तो यह मेरा अपमान है। कहीं भक्त ऐसे होते हैं? अंत: से आवाज आई, थोड़ी देर और इसकी गतिविधि देखनी चाहिए। अत: वे रुक गए। जब रात होने लगी, तो उसने चमड़े के सारे ढेर को समेटा। जितना चमड़ा दिन भर में साफ कर लिया था, उसे एक गठरी में बाँधा और जो चमड़ा साफ न हो पाया था, उसे एक ओर समेटकर रखा। फिर एक मैला कपड़ा लेकर सिर से पैर तक अपने पसीने को पोंछकर घुटनों के बल बैठ गया और हाथ जोड़कर भावविभोर हो कहने लगा—"प्रभो! मुझे क्षमा करना, मैं बिना पढ़ा व्यक्ति आपकी पूजा करने के ढंग को भी नहीं जानता। मेरी आपसे यही विनय है कि मुझे कल भी ऐसी सुमति देना कि आज की तरह ही आपके द्वारा दी गई चाकरी को ईमानदारी के साथ पूर्ण कर सकूँ।" देवर्षि ने देखा कि भगवान विष्णु उसके समीप खड़े मुस्करा रहे हैं। वे बोले—"देवर्षि! समझ में आया, इस भक्त की उपासना की श्रेष्ठता का रहस्य?" देवर्षि का अभिमान चूर्ण हुआ और वे सच्चे हृदय से भगवान की भक्ति में लीन हो गए।

क्यों दु:खी है इनसान?

क्या जीवन सचमुच दु:खमय है या व्यक्ति स्वयं ही अपने जीवन को दु:खमय या सुखमय बनाता है? अक्सर हर जगह दु:खी-ही-दु:खी लोग नजर आते हैं। कोई किसी एक कारण से दु:खी है तो कोई किसी दूसरे कारण से। प्रश्न उठता है कि आखिर मनुष्य के दु:ख का मूल कारण है क्या? क्यों देवदुर्लभ तन पाकर भी मनुष्य दु:खी है? क्यों सच्चिदानंदस्वरूप भगवान का अंश होने के बावजूद भी मनुष्य दु:खी है? क्यों भौतिक सुख-साधनों के होते हुए भी मनुष्य दु:खी है?

शास्त्र कहते हैं कि अज्ञान ही मनुष्य के दु:खों का मूल कारण है। ज्ञान का अभाव ही अज्ञान है। अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान न होना ही अज्ञान है और अपने सत्-चित्-आनंदस्वरूप का बोध होना ही ज्ञान है। सत्य-असत्य, नित्य-अनित्य का ज्ञान न होना ही अज्ञान है और इसका ज्ञान होना ही वास्तविक ज्ञान है। अपनी अज्ञानता के कारण ही मनुष्य को विभिन्न जन्मों में जो शरीर मिलता रहा है, वह उसी को अपना सब कुछ मानता रहा है। वह शरीर, मन और बुद्धि को ही अपना वास्तविक स्वरूप मानता रहा है। फलस्वरूप मनुष्य शरीर के सुख को ही, इंद्रियजन्य सुख को ही वास्तविक सुख मानता रहा है और शरीर के दु:ख को ही वास्तविक दु:ख मानता रहा है।

जो भी अन्य जीव मनुष्य को शारीरिक सुख प्राप्त कराने में सहायक होता है, वह उसको ही अपने सुख का कारण मानकर उसको अपना मित्र, अपना हितैषी मानता रहा है, उससे वह राग—प्रीति करता है और जो भी लोग उसे सुखप्राप्ति में बाधक दिखते हैं, जो लोग उसे दु:ख देते हैं, वह उन्हें ही अपने दु:ख का कारण मानकर, उन्हें अपना शत्रु मानता है और उनसे द्वेष, नफरत, घृणा आदि करता है।

इस प्रकार अपनी अज्ञानता के कारण मनुष्य राग-द्वेष मूलक भावनाओं के कारण ही अपने लिए बुरे कर्मों का संचय करता है। वह अपने लिए नित्य नए कर्मों के बंधन तैयार करता है। वह लोभ-मोह, राग-द्वेष, अच्छे-बुरे, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य आदि कर्मों के बंधन में स्वयं को बाँधता है और इस प्रकार स्वयं-ही-स्वयं को बाँधकर वह स्वयं को दु:खी करता है।

वस्तुत: मनुष्य स्वयं को शरीर मानकर, इंद्रियसुख के लिए अच्छे-बुरे, पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ आदि कर्म करता रहता है। सत्य तो यह है कि जिस शरीर को वह सब कुछ मान बैठता है; वह शरीर नश्वर है, क्षणभंगुर है। वह शरीर

नैवास्य भविता कश्चिन्नासौ भवति कस्यचित्।
पथि संगम एवायं दारैः पुत्रैश्च बन्धुभिः॥
यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयाता महोदधौ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद् भूतसमागमः॥

अर्थात जैसे महासागर में एक काष्ठ कहीं से, दूसरा कहीं से मिलकर आता है और दोनों थोड़ी देर मिलकर फिर बिछड़ जाते हैं, वैसे ही प्राणियों का यह समागम भी संयोग-वियोग से युक्त है।

कभी भी, कहीं भी छूट सकता है। जन्म-मरण की यात्रा करते हुए जीवात्मा ने न जाने कितने शरीरों को छोड़ा है और कितने शरीरों को प्राप्त किया है। हाँ! जीवात्मा की आत्मा ही है जो शाश्वत है, सनातन है, अजर है, अमर है।

यह आत्मा ही परमात्मा की चिनगारी है, जो जीव के अंदर ही मौजूद है, शरीर के अंदर ही मौजूद है। शरीर तो इस आत्मा का वस्त्र मात्र है, आवरण मात्र है। अब तक जीव की आत्मा ने न जाने कितने शरीररूपी वस्त्रों का त्याग

किया है और कितने ही नवीन वस्त्रों को, शरीरों को धारण किया है।

परमात्मा का अंश होने के कारण जीव की आत्मा में अनंत शक्तियाँ, अनंत क्षमताएँ निहित हैं, पर वे सोई हुई हैं। हमें योग व अध्यात्म की विविध साधनाओं के द्वारा अपनी आत्मा की उन्हीं अनंत शक्तियों को जाग्रत करना है। आत्मा की अनंत शक्तियों के जागते ही मनुष्य साधारण-से-असाधारण, नर-से-नारायण और मानव-से-माधव की ऊँचाई प्राप्त कर लेता है।

ऐसी स्थिति में वह स्वयं ही सत्-चित्-आनंदस्वरूप हो जाता है। उसका जीवन आनंद, उमंग व उल्लास से भर उठता है। तब वह राग-द्वेष, हर्ष-विषाद, मान-अपमान, जीवन-मरण आदि द्वंद्वों से ऊपर उठ जाता है और साक्षी भाव से, द्रष्टा भाव से रहते हुए अनासक्त भाव से अपने कर्त्तव्य कर्म करता है। उसका जीवन ही आनंदित हो जाता है। अपने शरीर को नश्वर और अपनी आत्मा को परमात्मा का अंश मानते ही हमारी मनोदशा बदलने लगती है, जीवन-दृष्टि बदलने लगती है।

आत्मा की अनंत शक्तियों के जागते ही हमारे शरीर, मन, प्राण, बुद्धि आदि सभी दिव्य होने लगते हैं, ईश्वरमय होने लगते हैं। यह धरा ही हमारे लिए दिव्य धाम बन जाती है, स्वर्ग जैसी बन जाती है। इसलिए हम देहाभिमानी नहीं, आत्माभिमानी बनें। **हम देहपरायण नहीं, आत्मपरायण जीवन जिएँ; क्योंकि आत्मपरायण जीवन से ही मिलता है सच्चा सुख, शाश्वत सुख।** हम देह की उपासना नहीं, बल्कि देहरूपी देवालय में प्रतिष्ठित आत्मा की उपासना करें, परमात्मा की उपासना करें। हम देहासक्ति छोड़ ईश्वरसमर्पित जीवन जिएँ। ❑

हमें अपना उद्धार करना चाहिए, अपने को सुधारना और सँभालना चाहिए। आज की अपेक्षा कल अधिक निर्मल और अधिक उत्कृष्ट बनने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि इस मार्ग को अपना सकना हमारे लिए संभव हो सका तो न केवल अपना, वरन समाज का, सारे विश्व का भी हित साधने का श्रेय प्राप्त करेंगे। युग निर्माण का कार्य व्यक्ति निर्माण से ही आरंभ होता है। संसार की सेवा का व्रत लेने वाले प्रत्येक परमार्थी को अपने आप की सेवा करने का व्रत लेकर विश्व मानव की उतने अंश में सेवा करने को तत्पर होना चाहिए, जितने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर है। समस्त संसार की सेवा कर सकना कठिन है। अपनी सेवा तो आप कर ही सकते हैं। समस्त संसार को सुखी बनाना और सन्मार्ग पर चलाना यदि अपने लिए कठिन हो तो अपने को सुखी-संतुलित एवं सन्मार्गगामी तो बना ही सकते हैं। दूसरों का उद्धार कर सकना उसी के लिए संभव होता है, जो अपना उद्धार कर सकने में समर्थ होता है। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

करुणा व प्रेम के मूर्तिमान रूप भगवान बुद्ध

जन-जन को मानव धर्म का उपदेश देने वाले तथागत महात्मा गौतम बुद्ध मानवता के मूर्तिमान रूप थे। वे सत्य, अहिंसा, करुणा, प्रेम आदि दिव्य मानवीय गुणों के मूर्तिमान रूप थे। जो उपदेश वे दूसरों को देते थे, उसका पालन वे स्वयं अपने जीवन में भी करते थे। इसलिए उनके शिष्य उनके आचरण से नित्य कुछ नई-नई चीजें सीखते थे। उनका जीवन एक खुली किताब की तरह था जिसे देखकर, जिसे पढ़कर शिष्यों को बहुत कुछ सीखने को मिलता था।

उनके जीवन से जुड़े ऐसे अनेक प्रसंग और घटनाएँ हैं, जिनसे उनके व्यक्तित्व में पैठी हुई गहरी मानवता के दर्शन होते हैं। उन्हीं में से कुछ रोचक व प्रेरक घटनाएँ यहाँ प्रस्तुत हैं। तथागत भगवान बुद्ध का परिनिर्वाण होने वाला था। वे अपने नश्वर शरीर को छोड़कर इस संसार से विदा होने वाले थे। रात का अंतिम पहर था। अनेक भिक्षु भगवान की शय्या को घेरे हुए बैठे थे। भिक्षु संघ को भगवान अंतिम उपदेश दे रहे थे।

तथागत कह रहे थे—"भिक्षुओ! बुद्ध धर्म और संघ के संबंध में यदि किसी भिक्षु को कुछ शंका हो तो पूछ लो। पीछे अफसोस मत करना कि तथागत हमारे सम्मुख थे। किंतु हम उनसे कुछ पूछ न सके, पर कोई भी शिष्य कुछ बोल नहीं रहा था। सब मौन थे। तीन बार तथागत ने कहा, किंतु फिर भी कोई भी भिक्षु पूछने को नहीं उठा। इस पर तथागत को शंका हो गई कि कहीं मेरे गौरव का विचार कर तो शिष्य पूछने में संकोच नहीं कर रहे हैं। अत: करुणा की प्रतिमूर्ति तथागत कहने लगे—"शायद भिक्षुओ! तुम मेरे कारण नहीं पूछ रहे। तो भिक्षुओ! जैसे मित्र, मित्र से पूछता है, वैसे तुम मुझसे पूछो।"

ऐसा कहकर तथागत अपने आसन से उतरकर शिष्यों के पास भूमि पर आ गए। तथागत को चिंता थी कि कहीं उनका विशाल लोकोत्तर व्यक्तित्व शिष्यों के कल्याण में बाधक न बने। अत: वे उनके सखा बने। उनके पास आकर नीचे जमीन पर उनके साथ बैठे, ताकि शिष्य निस्संकोच भाव से उनसे पूछ सकें।

बुद्धपुरुषों की यह विनम्रता ही तो मानव धर्म की आधारभूमि है। तथागत का यह व्यवहार उनकी सहृदयता और विनम्रता का परिचायक था। तथागत शिष्यों से कहने लगे—"आनंद! मुझ कल्याणमित्र को पाकर जन्मधर्मा प्राणी कालचक्र से विमुक्त हो जाते हैं। इसलिए जो भी पूछना चाहो पूछ लो।" तथागत की ऐसी कल्याणकारी बातें सुनकर सभी की आँखें भर आईं। फिर तथागत ने मित्रवत् भाव से भिक्षुओं से बातें कीं। सबने अपने कल्याणमित्र से अपने मन की, अपने हृदय की बातें कीं। सबको समाधान भी मिला।

इसी प्रकार एक दूसरा घटनाक्रम भी तथागत के परिनिर्वाण के समय का है। चुन्द कर्मारपुत्र (धातुकार) के यहाँ तथागत ने अंतिम भोजन किया था। उसके बाद ही तथागत को खून गिरने की पीड़ादायी बीमारी उत्पन्न हो गई थी, जो उनके शरीरांत का कारण बनी। तथागत को चुन्द कर्मारपुत्र की भावनाओं का बड़ा ख्याल था। तथागत के भक्त, उपासक चुन्द कर्मारपुत्र को यह कष्ट हो सकता था कि उसका भोजन करके ही तथागत को बीमारी हुई और वे मृत्यु को प्राप्त हुए।

वे अपने भक्त, अपने उपासक के मन की पीड़ा, व्यथा और ग्लानि को मिटाना चाहते थे। इसलिए शरीर छोड़ने से पूर्व उन्होंने आनंद को आदेश दिया—"आनंद! चुन्द कर्मारपुत्र की इस चिंता को दूर करना और कहना कि आयुष्मान! धन्य है तू कि तेरे भोजन को करके तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। आनंद! चुंद कर्मारपुत्र की चिंता को तू दूर करना। भला जिनके हृदय में अगाध करुणा का अधिवास था, वे ऐसा क्यों न कहते?

करुणा का कैसा लहराता सागर था तथागत का हृदय! कितना करुणाशील और क्रियाशील था तथागत का जीवन। जिस रात को उनका परिनिर्वाण हुआ और जब वे रुग्ण अवस्था में शय्या पर पड़े हुए थे तब उन्होंने रात के पहले पहर में कुसीनारा (कुशीनगर) के मल्लों को उपदेश दिया, बीच के पहर में सुभद्र को और अंतिम पहर में भिक्षु संघ

को उपदेश देकर बहुत प्रातः ही महापरिनिर्वाण में प्रवेश किया। यह सुभद्र कौन था, जिसे मध्य रात्रि में उपदेश देने के लिए तथागत ने उस अवस्था में भी समय निकाल लिया?

सुभद्र एक परिव्राजक था, जो अपनी कुछ शंकाओं को लेकर उस रात भगवान गौतम बुद्ध से मिलने पहुँचा, पर आनंद ने उसे मिलने से रोक दिया और कहा—"सुभद्र! तथागत को तकलीफ मत दो। भगवान थके हुए हैं।" भगवान ने आनंद की बात सुन ली। उन्होंने आनंद से कहा—"नहीं आनंद! सुभद्र को मत मना करो, सुभद्र को दर्शन पाने दो। वह परम ज्ञान की इच्छा से कुछ पूछना चाहता है, तकलीफ देने की उसकी इच्छा नहीं है। पूछने पर मैं जो उससे कहूँगा, उसे वह जल्दी ही जान लेगा।"

मध्य रात्रि में, उस अवस्था में, सुभद्र को भी तथागत से उपदेश सुनने का सौभाग्य मिला। अधिकारी शिष्य को उपदेश देने के लिए तथागत के पास कोई असमय न था। सचमुच तथागत करुणाशील थे, क्रियाशील थे। तभी उनके विराट व्यक्तित्व की छाया में अगणित साधकों ने साधना सीखी, भक्तों ने, उपासकों ने उनमें अपने भगवान को देखा, पाया और कोटिशः लोगों ने मुक्तिलाभ को प्राप्त किया और उनके उपदेश को सुनकर, उन्हें पाकर कोटिशः लोगों को नई जीवन-दृष्टि व नई जिंदगी मिली। तथागत बुद्ध के जीवन की अंतिम रात्रि का संपूर्ण घटनाक्रम अनेक साधकों के लिए आज भी प्रेरणा का प्रसंग है और अनेकों को नई दिशा देता दिखाई पड़ता है। ❑

एक ब्राह्मण दान की याचना करने हेतु धर्मराज युधिष्ठिर के पास पहुँचे। राज्य के कार्यों में व्यस्त युधिष्ठिर ने उन्हें दूसरे दिन आने को कह दिया। वहाँ उपस्थित भीमसेन को यह बात उचित न लगी। धर्मराज के कार्यों में विघ्न न डालते हुए वे शांतिपूर्ण ढंग से बाहर आए व तत्काल ही सेवकों को बुलाकर सभी को मंगल वाद्य बजाने की आज्ञा दी और स्वयं भी दुंदुभि बजाने लगे। असमय मंगल वाद्यों की आवाज से राजमहल गूँज उठा, जिसे सुनकर स्वयं युधिष्ठिर भी हतप्रभ थे। वे तुरंत ही कार्यों को विराम देकर बाहर दौड़े आए। भ्राता भीम व सेवकों को रोककर इस आयोजन के सूत्रधार भीम से उन्होंने इस प्रदर्शन का कारण पूछा।

भीमसेन तंज कसते हुए कहने लगे—"महाराज! आपने काल को जीत लिया है, इस खुशी में हम यह उत्सव मना रहे हैं।" अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए भीम ने कहा—"दक्षिणा की याचना के लिए आए ब्राह्मण को दूसरे दिन बुलाने का तात्पर्य तो यही है कि आने वाला समय आपके वश में है।" युधिष्ठिर ने भ्राता भीम का अभिप्राय समझा और उन्हें अपनी भूल का एहसास हुआ। प्रतीक्षारत ब्राह्मण को पुनः सादर आमंत्रित कर युधिष्ठिर ने उनसे क्षमा माँगी व उनका यथायोग्य सत्कार कर उन्हें विदा किया। ब्राह्मण के चले जाने के उपरांत उन्होंने भ्राता भीम को अपने पास बुलाया और कहा—"सचमुच भीम! अच्छे कार्यों में देर नहीं करनी चाहिए।"

भारत में सूर्य-उपासना

भौतिक रूप से वैज्ञानिकों के लिए सूर्य मात्र एक जलता हुआ आग का गोला भर है, जिसमें हीलियम और हाइड्रोजन की रासायनिक क्रियाएँ चलती रहती हैं; जबकि सूक्ष्मस्तर पर ज्योतिष में सूर्य ग्रहों के अधिपति हैं और कारणस्तर पर ब्रह्मांड के केंद्र तथा इसके उद्गम। आध्यात्मिक रूप से सूर्य व्यक्ति की आत्मा हैं। वेदों में सूर्य को जगत् की आत्मा कहा गया है। आश्चर्य नहीं कि भारत में गायत्री महामंत्र के रूप में सूर्य-उपासना इसकी आध्यात्मिक संस्कृति के केंद्र में रही है।

सूर्य-उपासना की विशेषता इसकी सरलता एवं सार्वभौमिकता में है, जो विश्व के हर कोने में किसी-न-किसी रूप में प्रचलित मिलती है। यह सूर्य के प्रकृति के अधिपति होने के कारण स्वाभाविक भी है। प्रारंभिक दौर में मनुष्य का जीवन प्रकृति की गोद से ही शुरू हुआ था। भारत में वैदिक काल में सूर्योपासना व्यापक रूप से प्रचलित रही। वेदों में सूर्य को विविध नामों से पुकारा गया; जैसे—सूर्य, सविता, मित्र, विष्णु, पुष्ण, अश्विन, आदित्य, रोहिता आदि।

वेदों के अनुसार सूर्य की उपासना मनुष्य को हर तरह की अशुद्धि एवं पाप से मुक्त कर देती है। यह मनुष्यों को रोगमुक्त कर देती है। असाध्य नेत्र रोगों का इसकी किरणों से उपचार होता है। वैदिक युग में गायत्री महामंत्र के रूप में सूर्य-उपासना देव संस्कृति के केंद्र में आ गई थी। उपनिषदों में सूर्य का पुरुष के रूप में विकास हुआ है। प्राण, आत्मा, ब्रह्म, प्रजापति के रूप में सूर्य का प्रतिनिधित्व इसके आध्यात्मिक स्वरूप को इंगित करता रहा है।

सूर्य को परम सत्य ब्रह्म के साथ एक मानकर देखा जाता है व साथ ही ओंकार के रूप में सूर्य की समतुल्यता परिभाषित होती है। कुछ स्थानों पर आदित्य के रूप में तो कुछ स्थानों पर उनके सविता रूप को परम सत्य ब्रह्म के साथ एक देखा जाता है। इस तरह उपनिषदों में वैदिक सूर्य देवता की ब्रह्म के रूप में उपासना की जाती रही।

कठोपनिषद् में सूर्य की आदित्य के रूप में प्रशंसा है, जिसमें इसे स्वप्रकाशित माना गया है, जिसको जानने से मनुष्य मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है तथा मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है। सूर्य की प्रातः, सायं, दोपहर की उपासना मन को शुद्ध करती है। सूर्य की उपासना सांसारिक इच्छाओं को भी पूरा करती है।

छांदोग्य उपनिषद् में सूर्य के माध्यम से पुत्रप्राप्ति की बात कही गई है। सूर्योपनिषद् एवं चाक्षुषोपनिषद् सूर्य की ही उपासना के लिए समर्पित हैं। चाक्षुष विद्या को नेत्रों के विकार के उपचार के रूप में विस्तार से बताया गया है। सूर्योपनिषद् में सूर्य को आत्मबोध प्रदान करने वाला, स्वास्थ्य, समृद्धि और पवित्रता देने वाला बताया गया है। कौषीतकी और मैत्री उपनिषदों में सूर्य-उपासना की विधि को जप, अर्घ्य, आचमन, प्राणायाम, मार्जन एवं यौगिक अभ्यास के रूप में बताया गया है। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् सूर्य भगवान की श्रेष्ठता को ही प्रतिपादित करते हैं।

श्रोत्र काल से होकर महाकाव्य काल का समय आया, जिसमें उपनिषद् के अव्यैक्तिक एवं अमूर्त सूर्य ने एक वैयक्तिक एवं मूर्त स्वरूप धारण किया, जिसके फलस्वरूप सूर्य भगवान के मानवीय स्वरूप का तथा सूर्य देवता का सौर संप्रदाय के रूप में विकास हुआ। रामायण महाकाव्य में भी सूर्य-उपासना के विविध रूप मिलते हैं। भगवान राम, लक्ष्मण एवं सीता माता हाथ उठाकर सूर्य की उपासना किया करते थे। भगवान राम का जन्म सूर्यवंश में हुआ था। श्रवण कुमार के माता-पिता प्रातः-सायं सूर्य-उपासना करते थे।

ऋषि अगस्त्य ने भगवान राम को रावण को परास्त करने के लिए आदित्य हृदय स्तोत्र का पाठ बताया था, जो सूर्य-उपासना का एक उच्चस्तरीय प्रयोग था। इसमें सूर्य को ब्रह्मा, विष्णु और महेश से भी महान बताया गया है; क्योंकि वे सभी प्राणियों के सृजेता, पालक-पोषक और संहारक हैं। रामायण के अतुलित योद्धा बजरंगबली हनुमान ने गुरु के रूप में सूर्य भगवान से ही आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया था। महाभारत काल के ग्रंथों में सूर्य-उपासना जीवंत रूप में विद्यमान

मिलती है। कुंती, द्रौपदी, कर्ण, संवर्ण, अर्ववसु उस काल के प्रख्यात सूर्य-उपासक थे।

वनवास काल में ऋषि धौम्य ने युधिष्ठिर को अष्टोत्तरशतनाम सूर्य स्तोत्र दिया था। यह पांडवों को भूख की पीड़ा से मुक्त रखता था। इसके प्रात: और सायं एक बार पाठ से व्यक्ति की सारी सांसारिक इच्छाएँ पूर्ण होती थीं और अंतत: वह मुक्ति का अधिकारी बनता था। सूर्य को मोक्षद्वार भी कहा गया है। इस स्तोत्र में सूर्य के कई नाम आए हैं; यथा—अश्वथ, शाश्वत पुरुष, सनातन, सर्वदी, अनादि, प्रशांतात्मा, विश्वात्मा आदि।

भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं कि परमात्मा ने कर्मयोग का ज्ञान सूर्य को दिया; तत्पश्चात सूर्य ने मनु और मनु ने इक्ष्वाकु को दिया और सूर्यवंश इस तरह आगे बढ़ा। वस्तुत: सूर्य-उपासकों का स्वतंत्र संप्रदाय इस काल में उभर चुका था। युधिष्ठिर ने एक ऐसे समूह से अंतर्क्रिया की थी। माता कुंती से कर्ण का जन्म सूर्य भगवान के मानवीयकरण को दरसाता है। मौर्य और शुंग टेराकोटा (पक्की मिट्टी से मूर्ति बनाने की कला) एवं सिक्कों में पुरातात्त्विक साक्ष्य इस विकास का प्रमाण देते हैं। इस तरह वैदिक और काव्य काल की सूर्य-उपासना पूर्व पौराणिक काल में आगे बढ़ती दिखती है।

महाभारत काल में विकसित हो रहे सूर्य-उपासना के संप्रदाय पौराणिक काल में और विकसित हुए। पुराण काल में सूर्य मंदिर, सूर्य प्रतिमाओं, सूर्य तीर्थ, सूर्य भक्त, सूर्य व्रत एवं तप तथा सौर धर्म के व्यापक विवरण मिलते हैं। मार्कंडेय पुराण सूर्य के गुणों का वर्णन करते हुए इसे ज्ञान का सागर, अंधकार का भंजन, ईश्वर एवं सृष्टि का कारण बताता है। अग्नि पुराण सूर्य को भगवान विष्णु की अभिव्यक्ति एवं समस्त कार्यों का मूल कारण बताता है।

मत्स्य पुराण ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और शिव की उपासना का वर्णन करता है तथा इन्हें अभिन्न बताता है। ब्रह्मवैवर्त पुराण सूर्य उपासना का एक मंत्र देता है और इसे त्रिलोक का नेत्र, ब्रह्मांड का प्रमुख इष्टदेव, सारे कार्यों का बीज तथा करुणा की प्रतिमूर्ति बताता है। ब्रह्मांड पुराण में सूर्य को विश्व की सारी क्रियाओं का कारण माना गया है। इसमें उल्लेख आता है कि दिन, रात, माह, वर्ष, ऋतुएँ, युग—सभी उसी के कारण हैं। यह हर प्राणी का शक्तिस्रोत, सारे ग्रहों का नियंता और सृष्टि का पोषक है।

पद्म पुराण सूर्य का ब्रह्मा, विष्णु और शिव के रूप में वर्णन करता है। ब्रह्म पुराण में कहा गया है कि सूर्य अंधकार को दूर करता है एवं बिना सूर्य के पृथ्वी पर जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब के कुष्ठ रोग का उपचार सूर्य-उपासना द्वारा हुआ था। भविष्य पुराण में चंद्रभागा नदी के किनारे उनके द्वारा किए गए तप का विस्तृत वर्णन मिलता है। मुल्तान में रोग से मुक्त करने वाला यह सूर्य मंदिर स्थापित रहा। चीनी यात्री ह्वेनसांग और फारसी इतिहासविद् अल बेरुनी भी इस मंदिर के अस्तित्व का ऐतिहासिक प्रमाण देते हैं।

सूर्य-उपासना का स्वर्ण काल राजसी संरक्षण में फला-फूला। उस समय पूरा उत्तरी भारत सूर्य-उपासना के प्रभाव में था। सबसे अधिक सूर्य मंदिर उत्तर-पश्चिम और पश्चिमी भारत में पाए गए। अफगानिस्तान, बंगाल, उड़ीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और पश्चिमी भारत में प्राप्त चित्रों से यह स्पष्ट होता है। आठवीं सदी में कश्मीर का मार्तंड मंदिर और उड़ीसा का कोणार्क मंदिर सूर्य-उपासना के महत्त्वपूर्ण केंद्र रहे। दक्षिण में भी इसका चलन रहा, जिसका इंडोनेशिया तक प्रसार रहा।

वस्तुत: सातवीं से बारहवीं सदी को भारत में सूर्य-उपासना का स्वर्णिम दौर कह सकते हैं। बाद के पुराण और उपपुराण; जैसे—भविष्य, ब्रह्मा, स्कंद, वाराह, गरुड़, विष्णु धर्मोत्तर, भविष्योत्तर, साम्ब और कल्कि इसके वर्णन से भरे हुए हैं। मनतुंगा, मयूरा, भवभूति, अमरसिंहा, शंकराचार्य, आनंदगिरि आदि विद्वान भी इस पर प्रकाश डालते हैं।

सूर्य-उपासना की परंपरा आज भी जारी है। संध्यावंदन, अर्घ्य व यज्ञ के साथ रविवार व्रत, अचल सप्तमी व्रत, सूर्य षष्ठी व्रत, मकर संक्रांति, रथ सप्तमी जैसे व्रतों के रूप में सूर्य-उपासना ही प्रचलित है, लेकिन यह एक छोटे समूह तक सीमित है। साथ ही इसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का भी अभाव है।

ऐसे में सूर्य-उपासना की महान सार्वभौम परंपरा के परिष्कार एवं विस्तार की आवश्यकता है। परमपूज्य गुरुदेव ने गायत्री महामंत्र को जन-जन के बीच लोकप्रिय कर सूर्य-उपासना को इसके वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक स्वरूप के साथ लोकसुलभ किया है। आवश्यकता इसको जीवन में अपनाने व दूसरों को इसके लिए प्रेरित करने की है। ❑

बढ़ चलें ईश्वरोन्मुखी जीवन की ओर

हिमालय की तराई में बसे एक गाँव में सुबह से ही चहल-पहल बनी हुई थी। प्रकृति की गोद में बसे इस गाँव में अमीर-गरीब सभी लोग रहते थे। कुछ खेती-बारी करके गुजारा करते तो कुछ अनाज तथा अन्य वस्तुओं का व्यापार करके। कुछ लोग भगवत्प्रेमी थे तो कुछ धर्म को न मानने वाले भी। गाँव में कुछ लोग खुशहाल थे तो कुछ दुःखी भी। कुछ अच्छे लोग थे तो कुछ बुरे भी। कुछ उदार थे तो कुछ अनुदार भी। कुछ पुण्यकर्मों में रत रहने वाले थे तो कुछ पापकर्मों में भी रत रहते थे।

इसी गाँव में सेठ प्रियदास भी रहते थे। अन्न व दूध का व्यापार करके उन्होंने काफी धन-संपदा अर्जित कर ली थी। आस-पास के कई गाँवों तक उनका व्यापार फैला हुआ था, पर अपार धन-संपदा के मालिक होते हुए भी सेठ प्रियदास किसी धर्म, यज्ञादि अनुष्ठान कर्म में शायद ही कभी दानस्वरूप कुछ देते थे। उनकी मान्यता थी कि धन दान करने से धन की बरबादी होती है। यहाँ तक कि कभी किसी अभावग्रस्त व्यक्ति को भी वे अपनी कंजूस प्रवृत्ति के कारण कुछ दे पाने का भाव नहीं रखते थे।

उनकी इसी कंजूस प्रवृत्ति के कारण लोग उन्हें आपस में सेठ प्रियदास के बजाय सेठ कंजूसदास कहकर उनका मजाक भी उड़ाते थे, पर फिर भी उन पर इन बातों का शायद ही कभी कोई असर पड़ा हो। गाँव के लोग हिमालय की तराई में बसे जंगलों में अपनी गायें चराने जाया करते थे। गाँव के धनपत राम भी अपनी गायों को चराने उधर ही ले जाया करते थे। वहाँ आते-जाते उनकी मुलाकात हिमालय के एक सिद्ध योगी व तपस्वी से हो गई। रोज मुलाकातें होतीं, कुछ धर्मचर्चा भी होती।

एक दिन धनपत राम ने महात्मा जी को अपने गाँव आने का न्योता दिया, साथ ही यह आग्रह भी किया कि महात्मन्! आप कथा-सत्संग के माध्यम से हमारे गाँव के लोगों का भी कल्याण करें। उनके इसी आग्रह पर आज वे सिद्ध महात्मा गाँव पधार रहे थे और इसी को लेकर पूरे गाँव में चर्चा थी, चहल-पहल थी व साथ ही धनपत राम जी के मार्गदर्शन में कथा-आयोजन की व्यवस्था भी की जा रही थी।

उस कथा-सत्संग के लिए गाँव के अमीर-गरीब सभी लोगों ने दानस्वरूप कुछ अन्न व पैसे अवश्य दिए सिर्फ सेठ प्रियदास जी को छोड़कर और संयोग यह था कि कथा भी सेठ प्रियदास जी के पड़ोस में ही होने जा रही थी। अतः न चाहते हुए भी सेठ प्रियदास जी को उस कथा-सत्संग में बैठना था। महात्मा जी पधार चुके थे और सायंकाल उनका प्रवचन प्रारंभ हुआ। गाँव के सभी लोग महात्मा जी की अमृतवाणी का रसास्वादन कर रहे थे।

महात्मा जी कह रहे थे—"भक्तजनो! यह मनुष्य शरीर भोग-विलास में नष्ट करने व समाप्त कर देने के लिए नहीं प्राप्त हुआ है। यह शरीर तो मोक्ष की प्राप्ति का, ईश्वर की प्राप्ति का साधन है, आनंद की प्राप्ति का साधन है। अस्तु इस साधन का दुरुपयोग नहीं, सदुपयोग करो और अपने जीवन को सफल व सदुपयोगी बनाने का अनवरत प्रयत्न करो। साथ ही सदा दूसरों की सेवा करो, उपकार करो, परोपकार करो; क्योंकि जो सिर्फ स्वयं के लिए जीता है, उसका जीवन पशुतुल्य ही है। वह मनुष्य शरीर में रहते हुए भी प्रवृत्ति से, प्रकृति से पशु ही है और ऐसे लोग जीवन में कभी सुखी नहीं हो पाते।"

महात्मा जी ने आगे कहा—"ऐसे लोग अपार धन-संपदा के होते हुए भी सुखी नहीं हो सकते; क्योंकि उनके हृदय में करुणा, प्रेम व संवेदना का अकाल पड़ा हुआ होता है। जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल भुगतना पड़ता है। जो दूसरों की सेवा-सहायता करता है, भगवान उसकी सहायता अवश्य करते हैं। इस गाँव में सुखी लोग भी हैं और दुःखी लोग भी। जो सुखी हैं और जो दुःखी हैं—वे अपने कर्मों के कारण ही सुखी-दुःखी हैं।" महात्मा जी की अमृतवाणी समाप्त होने के बाद वहाँ प्रश्नोत्तर प्रारंभ हुआ।

भक्तों के बीच से प्रश्न आते रहे और महात्मा जी उनके प्रश्नों का उत्तर देते रहे, समाधान देते रहे। तभी वहाँ बैठे एक व्यक्ति ने पूछा—"महात्मन्! लोग अपने कर्मों से

सुखी और दुःखी क्यों और कैसे होते हैं ? इसे स्पष्ट करने की कृपा करें।'' महात्मा जी ने कहा—''आपके गाँव में कहीं गन्ने की फसल लहलहा रही है तो कहीं धान की। कहीं काँटे उगे हुए हैं तो कहीं बंजर जमीन ही पड़ी है। ऐसा क्यों है ? ऐसा इसलिए है कि गन्ने बोए गए हैं, इसलिए गन्ने की फसल लहलहा रही है, धान बोए गए हैं, इसलिए धान की फसल लहलहा रही है। कहीं बबूल-ही-बबूल उगे हुए हैं; क्योंकि वे बोए गए हैं और कई खेत यों ही बंजर पड़े हैं; क्योंकि उन्हें उपजाऊ बनाने का प्रयास-पुरुषार्थ किया ही नहीं गया है।''

अपनी बात को स्पष्ट करते हुए वे बोले—''उसी प्रकार हम अपने जीवन में अच्छे एवं बुरे, पाप एवं पुण्य आदि कर्मों के बीज बोते हैं। वे बीज ही एक दिन वृक्ष बनकर हमें कड़ुए या मीठे फल देते हैं। यदि हमने बबूल बोए हैं तो हमें काँटे ही मिलेंगे। बबूल में आम का फल भला कैसे लग सकता है ? यदि हमने अच्छे कर्म अर्थात सुख के बीज बोए हैं तो हमें जीवन में सुख प्राप्त होगा और यदि हमने बुरे कर्म अर्थात दुःख के बीज बोए हैं तो हमें जीवन में दुःख ही मिलेगा। इसलिए यदि हम जीवन में सुख एवं शांति चाहते हैं तो हमें हमेशा अच्छे कर्म ही करने चाहिए, पुण्यकर्म ही करने चाहिए, बुरे कर्म या पापकर्म नहीं।''

तत्पश्चात वहाँ बैठे एक दूसरे व्यक्ति ने पूछा—''भगवन्! यह पाप और पुण्य क्या हैं ? इनकी पहचान कैसे होती है ?'' महात्मा जी बोले—''वत्स! दूसरों का उपकार, परोपकार करना ही पुण्य है और दूसरों को पीड़ा देना ही पाप है। किसी को कष्ट देना, मन, वचन एवं कर्म से किसी की हानि पहुँचाना या हानि करने के विषय में सोच-विचार करना भी पाप है। हत्या, लूट, व्यभिचार, दुराचार, भ्रष्टाचार, हिंसा, निंदा, झूठ आदि बुरे एवं पापकर्म हैं।''

वे आगे बोले—''जिन कर्मों को करते हुए व्यक्ति को हार्दिक व आत्मिक प्रसन्नता, प्रफुल्लता व आनंद की अनुभूति होती है, वे सारे कर्म पुण्यकर्म हैं। जैसे किसी की सेवा, सहायता, परोपकार, उपकार करते हुए व्यक्ति को बहुत खुशी होती है। उसे आत्मिक आनंद मिलता है, पर हत्या-लूट, व्यभिचार, हिंसा, झूठ, निंदा आदि कर्म करते समय व्यक्ति को आत्मग्लानि होती है व उसका मन व्यथित और अशांत होता है। भगवान सर्वव्यापी व अंतर्यामी हैं और वे हमारे हरेक कर्म को देखते हैं और हमें हमारे कर्मों के अनुसार ही फल देते हैं। हम सर्वव्यापी व सर्वज्ञ भगवान से कुछ भी नहीं छिपा सकते हैं।''

महात्मा जी ने पाप और पुण्य को स्पष्ट किया ही था कि तभी वहाँ बैठे एक अन्य सज्जन ने पूछा—''महात्मन्! यदि बुरे कर्म, पापकर्म करने पर दुःख प्राप्त होता है और अच्छे कर्म करने पर, पुण्यकर्म करने पर सुख प्राप्त होता है तो फिर समाज में ऐसे लोग क्यों हैं, जो बुरे कर्मों में लिप्त हैं, पापकर्मों में लिप्त हैं, फिर भी उनके जीवन में सुख, धन-संपदा आदि उपलब्ध हैं और अच्छे कर्म, पुण्यकर्म करने वाले लोगों के जीवन में दुःख-दारिद्र्य आदि क्यों हैं ? ये तो परस्पर विरोधी बातें हैं।''

इस पर महात्मा जी ने कहा—''वत्स! तुमने बड़ा ही उत्तम प्रश्न किया है। बुरे व पापकर्मों में लिप्त रहने वाले लोगों के जीवन में जो सुख-शांति, धन-वैभव आदि दिख रहे हैं, वे उनके बुरे या पापकर्मों के कारण नहीं हैं, बल्कि अतीत में या पूर्वजन्म में उनके द्वारा किए गए पुण्यकर्मों, अच्छे कर्मों के कारण हैं और वर्तमान में वे जो पापकर्म, बुरे कर्म कर रहे हैं, उन कर्मों के फल उन्हें भविष्य में या अगले जन्म में अवश्य ही भुगतने पड़ेंगे। दरअसल हम जो भी कर्म करते हैं, वे संचित होते रहते हैं। वे संचित कर्म ही एक दिन प्रारब्ध बनकर, परिपक्व होकर हमारे जीवन में सुख एवं दुःख के रूप में प्रकट होते हैं।''

उन्होंने स्पष्ट किया—''कुछ कर्मों का फल हमें तत्काल मिल जाता है और कुछ कर्मों का फल भविष्य में या अगले जन्म में। यदि किसी पापी, दुराचारी व्यक्ति के खाते में पैसे हैं तो बैंककर्मी उसके पापी या दुराचारी होने के कारण उसे पैसे देने से इनकार नहीं कर सकता। जब तक उसके खाते में पैसे हैं, तब तक उसे पैसे मिलते रहेंगे, पर जैसे ही उसके खाते में पैसे समाप्त हो जाएँगे, वैसे ही उसके माँगने पर या चाहने पर भी पैसे नहीं मिल पाएँगे।''

इसे और भी स्पष्ट करते हुए महात्मा जी ने कहा—''उसी प्रकार यदि पापी व्यक्ति के खाते में उसके द्वारा अतीत में किए गए अच्छे या पुण्यकर्मों का पुण्य है तो वर्तमान में उसके द्वारा बुरे या पापकर्म किए जाने के बावजूद भी उसे सुख प्राप्त होगा, पर जैसे ही उसका पुण्य क्षीण हो जाएगा या समाप्त हो जाएगा, वैसे ही उसे उसके बुरे कर्मों, पाप कर्मों का फल भी मिलना प्रारंभ हो जाएगा।

वे आगे बोले—"दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सदाचारी, पुण्यात्मा व्यक्ति के जीवन में जो सुख दिख रहे हैं, वे उसके द्वारा वर्तमान में किए जा रहे एवं पूर्व में किए शुभ, पुण्य या अच्छे कर्मों के कारण हैं। वर्तमान में उसके द्वारा जो पुण्यकर्म आदि किए जा रहे हैं, वे भी संचित हो रहे हैं और प्रारब्ध के रूप में एक दिन अवश्य प्रकट होंगे। दुराचारी, पापाचारी व्यक्ति को सुखी देख कर हमें अक्सर अचरज होने लगता है। ऐसे में हमें याद रखना चाहिए कि प्रकृति दरअसल उसे सुख-ही-सुख दे रही है, जिससे कि उसके पुण्य समाप्त हो सकें और तब उसे उसके पापकर्मों के फल के रूप में दुःख मिलने प्रारंभ हों तो उसके दुःख मिलने में, भोगने में उसके पुण्यकर्म कोई व्यवधान न डाल सकें।"

वे बोले—"पुण्य भी तब तक उसके खाते से समाप्त हो चुके होते हैं और तभी उसका दुःख प्रारंभ होगा। उसी प्रकार पुण्यात्मा, महात्मा आदि के जीवन में दुःख-ही-दुःख प्रकट होने लगते हैं। इसके दो कारण हैं। एक तो तपस्या व साधना के दौरान साधक का आत्मबल इतना मजबूत होता है कि वह उन दुःखों को, कष्टों को, कठिनाइयों को आसानी से पार कर सकता है। दूसरा प्रकृति उसे दुःख दे-देकर उसके खाते से दुःखों को जल्दी मिटाना चाहती है। प्रकृति उसके दुःखों को शीघ्र समाप्त करना चाहती है, जिससे कि वह शुद्ध-बुद्ध हो सके, उसकी चित्तशुद्धि हो सके और संसार के प्रति उसके मन में जो आसक्ति है, वह शीघ्र समाप्त हो सके और वह स्वयं को पूर्णरूपेण भगवान के चरणों में समर्पित कर सके।"

महात्मा जी ने कहा—"ऐसा इसलिए, ताकि उसे उसके पुण्यकर्मों का फल प्राप्त हो सके। फिर जैसे-जैसे संसार के प्रति, विषयों के प्रति उसकी आसक्ति कम होती जाती है, वैसे-वैसे भगवान के प्रति उसकी आसक्ति बढ़ती जाती है। दूसरा पुण्यात्मा व्यक्ति को उसके पापकर्मों के कारण दुःख मिल रहा हो, यह जरूरी नहीं, बल्कि कारण यह है कि दुःख देकर भगवान उसे तपाना चाहते हैं; वैसे ही जैसे अग्नि में डालकर सोना कुंदन बनता है। वह चमक उठता है, निखर उठता है। वैसे ही भगवान उसे कठिन परिस्थितियों से गुजारकर उसे और भी फौलाद का बनाना चाहते हैं, जिससे कि उसे कुछ महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी जा सके।

"इस आधार पर हम देखें तो आचार्य शंकर, मीराबाई, कबीर आदि महापुरुषों के जीवन में क्या कम कष्ट रहे? नहीं। उन्हें भी अपार कष्ट व कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। तभी वे भगवान के यंत्र बन सके, उपकरण बन सके और महान कार्य संपन्न कर सके। ऐसे महापुरुष सर्वोच्च आदर्शों के लिए, धर्म की स्थापना के लिए, समाज-सुधार के लिए, जनकल्याण के लिए स्वयं ही दुःखों का वरण करते हैं। ऐसे सिद्ध, योगी, ऋषि-मुनि व वीतराग महापुरुषों के कर्म पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ आदि से सर्वथा परे होते हैं।

"अस्तु ऐसे मुक्तपुरुष कर्मों के परिणाम से परे व मुक्त होते हैं। उनके तो हरेक कर्म ही अकर्म व निष्काम होते हैं।" अब जब सत्संग के समापन का समय होने को था कि तभी धनपत राम जी ने पूछा—"प्रभु! हम लोग बुरे कर्म, पापकर्म करने से बचे रहें, इसका कोई सरल उपाय बताने की कृपा करें।" धनपत राम के प्रश्न को सुनकर महात्मा जी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—"वत्स! तुम्हारा प्रश्न निस्संदेह सराहनीय है। हममें पापकर्म करने की प्रवृत्ति ही न हो इसके लिए हमें रुचि या अरुचिपूर्वक भी दान, परोपकार, उपकार, सेवा, सहायता आदि पुण्यकर्म, शुभ कर्म, अच्छे कर्म करते रहना चाहिए।"

वे कहने लगे—"हमें सदा सच्चाई व धर्म के मार्ग पर चलना चाहिए। हमें नियमित रूप से भगवद्भजन व शास्त्रों का स्वाध्याय करते रहना चाहिए। जिसके हृदय में भगवान की मधुर छवि विद्यमान है, वह व्यक्ति कभी बुरे कर्म में, पापकर्म में लिप्त हो ही नहीं सकता; क्योंकि उसमें पापकर्म करने की प्रवृत्ति पैदा ही न होगी। शास्त्रों का स्वाध्याय करने से उसे नित्य-अनित्य, सत्य-असत्य का बोध हो सकेगा। वह पापकर्मों के दुष्परिणाम व पुण्यकर्मों से मिलने वाले शाश्वत सुख व आत्मिक आनंद का ज्ञान प्राप्त कर सकेगा। वह मानव जीवन की गौरव-गरिमा को समझ सकेगा और तदनुरूप जीवन जीने का अभ्यास भी कर सकेगा।"

इसी के साथ महात्मा जी की अमृतवाणी समाप्त हुई। सभी लोग अपने घर लौट चले। रात्रि में सोते समय सबने महात्मा जी के संदेश पर गंभीर चिंतन-मनन किया। चिंतन करने वालों में पापात्मा भी थे और दुरात्मा भी, बुरे भी थे और अच्छे भी। अच्छे लोग और अधिक अच्छे कर्म करने को प्रेरित हुए। वे भगवद्भक्ति करने को प्रेरित हुए। वहीं दुरात्मा, पापात्मा प्रवृत्ति के लोगों ने भी महात्मा जी के संदेश

के आलोक में गंभीर चिंतन-मनन किया। सबने अपनी आत्मसमीक्षा की व एक सार्थक जीवन जीने का संकल्प भी लिया। ऐसे दिव्य संकल्प लेने वालों में सेठ प्रेमदास ही क्यों, कई अन्य लोग भी थे।

गाँव के अधिकांश लोगों ने दूसरे ही दिन महात्मा जी से गुरुदीक्षा ली। उसमें सेठ प्रेमदास अग्रिम पंक्ति में बैठे थे। गुरुदीक्षा के उपरांत महात्मा जी ने सबको गुरुदीक्षा के नियम-अनुशासन स्पष्ट करते हुए कहा—"योग-अध्यात्म सिर्फ कहने की नहीं, बल्कि करने की वस्तु हैं। वे जीवन में जीने की वस्तु हैं। ये बातें बताने की चीज नहीं है। ये जीवन में उतारने की चीज हैं। धर्म-अध्यात्म व्यक्ति के, साधक के जीवन व्यवहार से प्रकट होना चाहिए अन्यथा सिर्फ बातें बनाने व शास्त्रों की बातें करने से कोई लाभ नहीं।" तत्पश्चात सभी ग्रामवासियों ने महात्मा जी को सादर विदाई दी। सभी ग्रामवासी महात्मा जी के कहे अनुसार जीवन जीने लगे।

वे कोई भी कर्म करते समय यह अवश्य याद रखते कि सर्वव्यापी, सर्वज्ञ भगवान उनके कर्म को देख रहे हैं। वे बुरे कर्म, अशुभ कर्म, पापकर्म आदि से दूर रहने लगे। यह मानव शरीर भगवान का मंदिर है और उस मंदिर में आत्मा के रूप में स्वयं परमात्मा का वास है—महात्मा जी के इस उपदेश को स्मरण करते हुए वे नशा, मांस, शराब आदि चीजों से दूर रहने लगे। सेठ प्रियदास जी अब धर्म, यज्ञ, अनुष्ठान आदि सामूहिक कार्यक्रमों में बढ़-चढ़कर सहयोग करने लगे। सभी ग्रामवासी सामूहिक श्रमदान के द्वारा गाँव की साफ-सफाई करने लगे।

गाँव में सामूहिक सहयोग से वाचनालय की स्थापना की गई। स्वस्थ रहने के लिए योगशाला, व्यायामशाला की स्थापना की गई। गाँव के सभी लोग उसमें प्रातःकाल योग व व्यायाम का अभ्यास करने लगे। गाँव के सभी लोग एकदूसरे से प्रेम व सहयोग करने लगे। कभी एकदूसरे को जानी-दुश्मन मानने वाले एकदूसरे से प्रेम करने लगे। गाँव में जब कोई व्यक्ति संकट में आता तो सभी लोग मिलकर उसका सहयोग करते। इस प्रकार गाँव के सभी लोग आपस में प्रेम-व्यवहार करने लगे।

वे पर्यावरण संरक्षण हेतु सामूहिक वृक्षारोपण अभियान चलाने लगे। गोपालन के प्रोत्साहन से गाँव में स्वरोजगार को बढ़ावा मिलने लगा। रासायनिक खेती के बजाय प्राकृतिक खेती का प्रसार होने लगा। सामूहिक सत्संग, स्वाध्याय की एक परंपरा व शृंखला-सी चल पड़ी। गाँव के छोटे-छोटे विवादों को आपसी संवाद के द्वारा गाँव में ही सुलझाया जाने लगा। महात्मा जी के उपदेश से सचमुच वहाँ के लोगों के साथ-साथ पूरे गाँव का कायाकल्प हो गया। लोगों के जीवन से धर्म-अध्यात्म प्रस्फुटित होने लगा। उस गाँव के लोग सचमुच एक नए जीवन, पवित्र जीवन, आध्यात्मिक जीवन व ईश्वरोन्मुखी जीवन की ओर बढ़ गए। ❑

शिष्य मंडली ने भगवान बुद्ध से पूछा—"भगवन्! मनुष्य के कितने वर्ग हैं?"

तथागत ने उत्तर दिया—"प्रिय शिष्यो! एक वे, जो अपना ही लाभ देखते हैं, भले ही इससे दूसरों को कितनी ही हानि उठानी पड़ती हो। दूसरे वे, जो औरों का भला करते हैं। तीसरे वे, जो अपना भी भला करते हैं और दूसरों का भी। चौथे वे प्रमादी हैं, जो न स्वयं सुखी रहते हैं न दूसरों को सुखी रहने देते हैं।" तथागत निष्कर्ष रूप में कहने लगे—"मेरी समझ में वे श्रेष्ठ हैं, जो अपने साथ-साथ दूसरों का भी भला करते हैं।" शिष्यों की जिज्ञासा का समाधान हुआ।

राष्ट्र समृद्धि का मूलमंत्र

हमारे देश का परिचय सभ्य, शालीन एवं सुसंस्कृत सामाजिक व्यवस्था से होता है। भारत की अपनी अमूल्य निधि के रूप में ये गुण यहाँ हमेशा से स्थापित रहे हैं। अनेकता में एकता भारतवर्ष की विशेषता रही है। इस सिद्धांत के पीछे यहाँ की सभ्यता, शालीनता एवं सुसंस्कृति ही महत्त्वपूर्ण गुण रहे हैं। इस सिद्धांत का अनुपम उदाहरण होने की वजह से भारत को विश्व में सम्मानित दृष्टि से देखा जाता है। एकदूसरे के प्रति परस्पर सहयोग की भावना, अपने अग्रजों का सम्मान, माता-पिता एवं गुरुजनों में ईश्वर के रूप का दर्शन, अन्य धर्मों-मजहबों व समुदायों के प्रति समानता एवं सहिष्णुता का व्यवहार इत्यादि यहाँ के विशेष गुण एवं विशेषताएँ माने जाते हैं।

ग्रामीण अंचल हो अथवा छोटा कस्बा, छोटे शहर हों अथवा महानगर—भारतवर्ष में सर्वत्र हमें उपरोक्त गुणों के दर्शन होते आए हैं। अपने न्यायालय हों अथवा अपनी पाठशालाएँ, अपना परिवार हो अथवा अपना धर्म, यहाँ के मंदिर हों अथवा मसजिदें, गुरुद्वारे हों अथवा यहाँ के गिरजाघर—सभी जगह से आपसी भाईचारा, सहयोग, सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह आदि मानवीय गुणों का पालन एवं मानवीय मूल्यों की रक्षा का संदेश ही दिया जाता है।

हिंसा-प्रतिहिंसा, छल-कपट, असहयोग, ईर्ष्या-द्वेष आदि अमानवीय गुणों की यहाँ सर्वत्र निंदा की जाती रही है। सद्गुणों एवं सद्विचारों को ही आभूषण के रूप में ग्रहण करने की शिक्षा यहाँ के विद्यालय, महाविद्यालय एवं धर्मग्रंथ हमेशा से देते आ रहे हैं। पाशविक प्रवृत्ति का परित्याग एवं मानवीय गुणों के प्रति आकर्षण यहाँ का मूल पाठ रहा है।

भारत की इसी शालीनता एवं सभ्यता की संस्कृति को आगे बढ़ाते हुए मानवीय एवं संवैधानिक मूल्यों की रक्षा करना प्रत्येक भारतीय का प्रथम कर्त्तव्य है। भारत की युवा पीढ़ी का दायित्व है कि इस कर्त्तव्य के निर्वहन में हमेशा तत्पर रहें एवं भारत की गौरवशाली परंपरा को जीवित रखने में सार्थक भूमिका निभाएँ।

सच्ची भारतीयता इसी परंपरा के परिपालन में है। सर्वधर्म समभाव एवं सामाजिक सहिष्णुता भारत की हमेशा से नीति रही है, जिसको आत्मसात् करना ही सच्ची राष्ट्रभक्ति एवं सच्चा राष्ट्रप्रेम है। इसीलिए युवावर्ग को अपनी राष्ट्रभक्ति एवं राष्ट्र के प्रति अपनी कर्त्तव्यपरायणता की प्रगति हमेशा दृढ़ रखने चाहिए एवं भारत के विश्व शांति का पक्षधर होने के प्रमाणस्वरूप अपने उदाहरण को स्थापित करना चाहिए।

भारत का इतिहास इस बात का गवाह है कि भारत एवं भारतीय जनमानस हमेशा से शांति का ही पक्षधर रहा है। रवींद्रनाथ टैगोर का शांति निकेतन, स्वामी विवेकानंद का विश्व समुदाय को भाइयों एवं बहनों के रूप में संबोधन, मदर टेरेसा को शांति के लिए दिया गया नोबेल पुरस्कार इस बात को प्रमाणित करते हैं कि भारतभूमि में हमेशा से ही शांति एवं सद्भाव को अपनी जीवन-दृष्टि मानने वाले शांतिप्रिय पुरुषों एवं महापुरुषों का जन्म होता ही रहा है।

महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, गुरु नानक देव आदि ने अपना जीवन लोगों को शांति का संदेश देने में ही व्यतीत किया। सम्राट अशोक ने महात्मा बुद्ध के शांति संदेश को उस समय भी श्रीलंका एवं चीन तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई; जबकि उन दिनों आवागमन के साधन काफी सीमित थे। आदि शंकराचार्य ने पूरे भारतवर्ष को शांति और एकता के सूत्र में बाँधने के उद्देश्य से ही भारत के चारों कोनों में चार मठों की स्थापना की थी।

वैदिक भारत में बड़े-बड़े यज्ञ एवं महायज्ञों के आयोजन विश्व शांति एवं कल्याण के उद्देश्य से किए जाते थे। धर्म की जय हो, अधर्म का नाश हो; जैसे उद्घोषों का प्रयोग भारत के जनमानस की शांतिप्रियता को प्रदर्शित करता है। रामायण काल एवं महाभारत काल में भी इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि उस समय का भारतीय जनमानस क्रमशः राम के पक्ष तथा पांडवों एवं कृष्ण के पक्ष में अंतिम समय तक युद्ध के विरोध में था। युद्ध को रोकने के प्रयास से उस समुदाय ने शांतिप्रियता का ही परिचय दिया था। इस तरह भारत अशांति का पक्षधर कभी नहीं रहा।

प्राचीन भारत में चार वर्ण एवं चार आश्रम की व्यवस्था का उद्देश्य भी यहीं था कि अपनी-अपनी सीमाओं के भीतर रहते हुए भारतवर्ष की शांति एवं एकता को अक्षुण्ण बनाए रखा जाए। प्राचीन भारत की सुख-समृद्धि इस बात को प्रमाणित करती है कि शांति एवं एकता की स्थापना ही भारतवर्ष का मूलमंत्र रहा है। आज भी विश्व समुदाय भारत को अनेकता में एकता का देश मानता है। धर्म, जाति, रंग, क्षेत्र की विविधता के बावजूद भी भारतवर्ष सदियों से एकता एवं समता का पक्षधर रहा है। जो कि यहाँ की शांतिप्रियता को ही प्रदर्शित करता है।

समाज के सभी वर्गों में आपस में प्रेम एवं सद्व्यवहार, एकदूसरे के धर्मों, रीति-रिवाजों, संस्कृतियों के प्रति आदर भाव भारतीय सभ्यता एवं शालीनता को विश्व में स्थापित करने का प्रमुख अस्त्र रहा है। सत्य को यहाँ ईश्वर समझा जाता है। सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की परंपरा यहाँ आदिकाल से रही है। भारत का आधुनिक इतिहास भी सत्य एवं अहिंसा के संबल को ही सर्वोपरि मानते हुए निर्मित हुआ है।

सदियों की गुलामी का भी भारत ने शांतिप्रिय साधनों से मुकाबला किया। महात्मा गांधी के सत्य और अहिंसा ही वे दो प्रमुख शस्त्र थे, जिनके द्वारा उन्होंने अँगरेजी शासकों का न केवल सामना किया, वरन उन्हें परास्त करते हुए भारत को स्वतंत्र कराने में सफलता हासिल की। हिंसा एवं आतंकवाद का उन्होंने हमेशा विरोध किया। आज की युवा पीढ़ी को ही आगे चलकर देश का नेतृत्व करना है, इसलिए; अपने भारतवर्ष के इतिहास से हमें सबक लेना चाहिए; क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत भी भारतीय नेतृत्व ने किसी भी राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय समझौतों को सुलझाने में शांति एवं समझौते के सिद्धांतों को ही सर्वोच्च प्राथमिकता दी है।

आज की युवा पीढ़ी को भी घर, परिवार, गली, चौराहा, समाज सभी जगह सभ्यता, शालीनता एवं सुसंस्कृति का परिचय देना चाहिए। विद्यालयों, महाविद्यालयों की गरिमा को बनाए रखना चाहिए; क्योंकि यही सब उनके भविष्य के निर्माण की सीढ़ियाँ हैं। युवा पीढ़ी जितनी शांत, धीर, वीर एवं गंभीर होगी—राष्ट्र उतना ही मजबूत होगा। युवाओं को अपने निहित स्वार्थ एवं अहंकार से ऊपर उठकर राष्ट्रहित के कार्यों में भागीदारी करनी चाहिए। ❑

अनंतपुर में राजा रामदत्त का राज्य था। अनंतपुर की सीमा के समीप गंगादास नामक शिल्पी पत्थर की सुंदर-सुंदर मूर्तियाँ बनाया करता था। एक दिन राजा उधर से गुजरे तो गंगादास की बनाई मूर्तियों को देखकर मुग्ध हो गए। उन्होंने गंगादास से अपनी मूर्ति बनाने को कहा। गंगादास ने मूर्ति बनानी प्रारंभ कर दी, परंतु मूर्ति उसकी कल्पना के अनुरूप नहीं बन पा रही थी। उसने कई बार प्रयास किया, पर असफल रहा। वह हारकर बैठ गया। तभी उसकी नजर एक चींटी पर पड़ी, जो एक दीवार के उस पार गेहूँ के दाने को लेकर जाना चाह रही थी, परंतु बार-बार गिर जाती थी, लेकिन उसने प्रयास नहीं छोड़ा और अंततः वह सफल हो गई। गंगादास को यह दृश्य देखकर लगा कि जब निरंतर प्रयास से यह छोटी-सी चींटी सफलता पा सकती है, तो मैं क्यों नहीं ? उसका खोया हुआ आत्मविश्वास लौटा। इस बार वह अपनी कल्पना के अनुरूप मूर्ति बनाने में सफल हो गया। राजा मूर्ति देखकर मंत्रमुग्ध हो गया। उसने गंगादास को बहुमूल्य उपहार दिए और उसे राजशिल्पी घोषित कर दिया।

सुखी-दांपत्य-जीवन

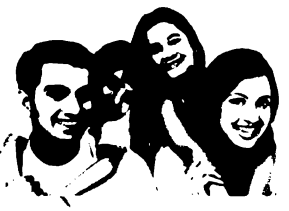

गृहस्थ जीवन को भारतीय संस्कृति में सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है, जिस पर शेष तीनों आश्रम आश्रित हैं। एक सद्गृहस्थ ही एक श्रेष्ठ वानप्रस्थ बनता है व वहीं से नैष्ठिक ब्रह्मचारी तैयार होते हैं। ये तीनों मिलकर संन्यास की परिपक्व अवस्था को संभव बनाते हैं। जीवन के इस चार आश्रम में विभाजित व्यवस्था में हर मोड़ पर धर्मयुक्त अर्थ एवं काम का सम्यक निर्वाह करना होता है, तभी जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस आधार पर दांपत्य जीवन का उद्देश्य सुख-भोग नहीं, बल्कि इस सोपान से गुजरते हुए उच्चतर कक्षा के लिए तैयारी है। अत: आश्चर्य नहीं कि परमपूज्य गुरुदेव ने इसे गृहस्थ तपोवन की संज्ञा दी।

गृहस्थ जीवन का आधार एक सुलझा हुआ दांपत्य जीवन है। यह जीवन को सही दिशा देते हुए सबके लिए कल्याणकारी बने, इसके लिए ऋषियों द्वारा निर्धारित सूत्रों का पालन आवश्यक हो जाता है। परस्पर सम्मान, सहकार और विश्वास दांपत्य जीवन का ठोस आधार है। जीवन में एकदूसरे का सम्मान और विश्वास महत्त्वपूर्ण हैं। व्यक्ति जिस रूप में है, उसे वैसे ही स्वीकार करना भारी साहस की माँग करता है। दांपत्य जीवन में इसकी विशेष आवश्यकता पड़ती है। बिना आपसी विश्वास एवं सम्मान के परस्पर सहकार कठिन हो जाता है और ऐसे में फिर गृहस्थ जीवन की गाड़ी हिचकोले खाने लगती है।

इससे उबरने के लिए आवश्यक हो जाता है कि एकदूसरे को समझने की कोशिश करें, परस्पर संवेदनशीलतापूर्ण व्यवहार करें तथा एकदूसरे पर अनावश्यक आशा-अपेक्षाओं का बोझा न डालें। एकदूसरे से अत्यधिक एवं अनावश्यक आशा-अपेक्षाएँ आपसी रिश्तों का दम घोटती हैं। ऐसे में हमेशा ही कोई-न-कोई शिकायत बनी रहती है। आपसी कलह-क्लेश व तनाव के छोटे-छोटे कारण उभरने लगते हैं और जीवन एक नारकीय यंत्रणा बन जाता है। एकदूसरे से अत्यधिक आशा-अपेक्षा को पालने का अर्थ दूसरों के साथ अपने जीवन का भी अपमान करना है।

इससे बाहर निकलने के लिए अपना ईमानदारीपूर्वक मूल्यांकन करें व गहराई से भीतर झाँकें तो यह स्पष्ट होगा कि इर इनसान गलतियों का पुतला है, मानवीय त्रुटियों से भरा हुआ है। इन्हें नजरअंदाज करते हुए, दूसरे को सुधरने का अवसर देते हुए तथा उदारता एवं सहिष्णुता जैसे सद्गुणों का अभ्यास करते हुए आगे बढ़ना समझदारी वाला कदम रहता है। एकदूसरे की छोटी-सी गलतियों को सहन न करने के कारण अक्सर रिश्तों में खटास आ जाती है। ऐसे में आएदिन आपसी खटपट होती रहती है।

संभव है कि जीवन के तनाव-दबाव में एक पक्ष आपे से बाहर हो जाए, नियंत्रण खो बैठे। दांपत्य जीवन में ऐसे पल सबके साथ आते हैं। इस समय जो शांत अवस्था में हो, वह पक्ष अपना बड़प्पन दिखाए। थोड़ा झुककर, शांत-मौन रहकर स्थिति को सँभालने का प्रयास करे और संकटकालीन स्थिति से गृहस्थी को बाहर निकाले। साथ ही एकदूसरे के आंतरिक मामलों में अनावश्यक हस्तक्षेप न करें।

घर-गृहस्थी में पति-पत्नी दोनों के अपने-अपने कार्यक्षेत्र निर्धारित होते हैं। पत्नी, पति के कार्यों में अनावश्यक टीका-टिप्पणी न करे, दोषदर्शन में न उलझे तथा पति भी पत्नी के कार्यों में दखल न दे। यदि कुछ मतभेद के बिंदु हैं तो शांत मन के साथ उन्हें निपटाएँ और यथासंभव एकदूसरे के कार्यों में सहयोग करें। समझदारी भरे संवाद के आधार पर हर तरह के मतभेदों का निराकरण हो जाता है और रिश्तों की जटिलताएँ सुलझ जाती हैं। इसके लिए आवश्यक हो जाता है कि एकदूसरे को समय दें व एकदूसरे के दिल की बातों को सुनें। इससे एक तो दोनों ओर से मन का बोझ हलका होता है और आपसी समझ भी बढ़ती है।

अनावश्यक संशय, गलतफहमियों का कुहासा भी ऐसा करने से छँटता है। इससे आपसी रिश्ते भी सुदृढ़ होते हैं और संबंध तमाम दुविधाओं, संशय एवं मानवीय दुर्बलताओं के बीच भी फलते-फूलते हैं और एक सुखी व अर्थपूर्ण जीवन का आधार बनते हैं। दांपत्य जीवन में परस्पर अनावश्यक मोह-आसक्ति से भी बचें और अपने कर्त्तव्यों पर केंद्रित

रहते हुए जीवनयात्रा का आनंद लें। जितना सफर साथ में लिखा है, इसे यादगार बनाएँ, प्रेरक बनाएँ। मानकर चलें कि जीवनयात्रा में सब एक ट्रेन में बैठे हैं व सबको अपने-अपने निर्धारित स्टेशन पर अपने समय पर उतरना है और यह संग-साथ सामयिक है।

कोई आपके साथ कैसा व्यवहार करता है, इस पर अधिक सोचने के बजाय अपना श्रेष्ठतम व्यवहार करें व एकतरफा कर्त्तव्यपालन एवं सेवा का आदर्श प्रस्तुत करते हुए यात्रा को संतोष व आनंद के साथ पूरा करें। परिवार के सभी सदस्यों पर इसका सकारात्मक प्रभाव अवश्य पड़ेगा। नारी को रमणी न मानें, माता का सम्मान दें। यह दांपत्य जीवन का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है।

दांपत्य जीवन के प्रारंभिक चरण में जैविक आधार एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व हो सकता है, लेकिन घर में संतान आने के बाद या समय के साथ फिर रिश्तों का जैविक आधार गौण हो जाता है और भावनात्मक पक्ष प्रमुख हो जाता है। ऐसे संयमित एवं सदाचारपूर्ण जीवन के आधार पर ही गृहस्थ जीवन तपोवन बनता है, जबकि इसके विपरीत एक असंयमित, अमर्यादित एवं विषयासक्त जीवन विष के समान गृहस्थी को बरबाद करता है। अत: नारी का एक माता के रूप में सम्मान व संयमित आचरण सदैव एक अनुकरणीय सूत्र रहता है।

हम एक सद्गृहस्थ के रूप में अपना अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करें। घर में पति-पत्नी प्रारंभ में अकेले होते हैं, बाद में संतान होने के साथ गृहस्थी के दायित्व बढ़ने लगते हैं। बच्चों के लिए परिवार पहली पाठशाला की तरह होता है। वे बड़ों के आचरण व व्यवहार से सीखते हैं तथा जाने-अनजाने में इनका अनुकरण करते हैं। अत: बच्चों का सही विकास हो, इसके लिए अपना श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करें।

घर में बड़े-बुजुर्ग, माता-पिता या अभिभावक के रूप में गरिमापूर्ण जीवन जिएँ व एक गौरवपूर्ण विरासत संतानों के लिए पीछे छोड़कर जाएँ, जिसका स्मरणमात्र करने से उनमें श्रेष्ठ संस्कारों का उभार होने लगे। निस्संदेह रूप में जितना हम सद्गृहस्थ के सद्गुणों का अभ्यास करेंगे, उतना ही परिवार में एक स्वस्थ एवं सकारात्मक वातावरण तैयार होगा। परिवार में नित्य स्वाध्याय-सत्संग को दिनचर्या में शामिल करें। इससे स्वयं का आध्यात्मिक विकास तो होगा ही, और साथ ही बच्चों को भी श्रेष्ठ संस्कार मिलेंगे।

इसके साथ परिवार में एक समय मिलकर सामूहिक उपासना व आरती आदि का क्रम निर्धारित किया जा सकता है, जिससे परिवार में आस्तिकता का वातावरण विनिर्मित हो सके। इसी आधार पर परिवार में एक सात्त्विक वातावरण तैयार होगा, जिसमें किसी तरह के कलह-क्लेश की संभावनाएँ निरस्त हो सकें और एक सुखी-शांतिमय गृहस्थ जीवन की नींव पड़ सके। इसके साथ यह अपेक्षा की जाती है कि हर सद्गृहस्थ शालीनता, श्रमशीलता, समय का सदुपयोग, सुव्यवस्था, सहयोग-सहकार, उदारता-सहिष्णुता, स्वच्छता, शिष्टता, सज्जनता जैसे सद्गुणों का अभ्यास करे।

माता-पिता व अभिभावक जितना गुणसंपन्न व चरित्रवान होंगे, संतानें उतनी ही श्रेष्ठ एवं सुसंस्कृत होंगी। इस तरह निस्संदेह रूप में दांपत्य जीवन एक जीवन-साधना है, समाज व संस्कृति की बहुत बड़ी सेवा है। सभ्य समाज से लेकर सशक्त राष्ट्र एवं शांतिमय विश्व की प्राथमिक इकाई के रूप में इसका सुलझा हुआ निर्वहन एक बड़ा योगदान माना जा सकता है। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

चेतना की शिखर यात्रा – 230

साधना-स्वर्ण जयंती

विगत अंक में आपने पढ़ा कि ईश्वरीय विधान एवं पूज्य गुरुदेव की प्रेरणा से सन् 1973 से मन बनाते हुए डॉक्टर साहब सन् 1976 में जाकर हरिद्वार स्थित सार्वजनिक उपक्रम बी.एच.ई.एल. में बतौर चिकित्सा अधिकारी नियुक्त हुए। हरिद्वार आने व यहीं बसने के पीछे डॉक्टर साहब की योजना पूज्यवर के सान्निध्य में रहकर एक कार्यकर्त्ता के रूप में युग-साधना करने व साथ ही में एक कुशल चिकित्सक के कर्त्तव्यों का निर्वहन कर लेने की थी, जो कि नियंता की योजना से सर्वथा भिन्न निकली। पूज्यवर की सूक्ष्मदृष्टि ने यह पूर्व में ही भाँप लिया कि डॉक्टर साहब के सर्वतोभावेन युग-साधना हेतु समर्पित होने की पात्रता उनके अगले जन्म में ही संभव है, जिस हेतु उन्हीं समर्थ सत्ता ने डॉक्टर साहब को नवजीवन प्रदान करने के उद्देश्य से रूपांतरण की इस दुःसाध्य प्रक्रिया को एक सामान्य-सी वाहन दुर्घटना के माध्यम से अंजाम दिया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण ...

सन् 1975 की गीता जयंती को गुरुदेव ने कहा कि अगले वर्ष वे एक लाख साधकों को चुनेंगे और उन्हें गायत्री की विशेष साधना सिखाएँगे। यह घोषणा शांतिकुंज परिकर में आयोजित एक कार्यक्रम में की गई थी। गीता जयंती पर पर्व देवता के पूजन के समय की गई इस घोषणा को सुनकर वहाँ उपस्थित परिजन थोड़े चकित हुए। समारोह में शिविरार्थियों के अलावा आश्रम में निवास कर रहे कार्यकर्त्ता और बाहर से आए परिजन भी थे। उस समय गायत्री परिवार का तेजी से विस्तार हो रहा था और परिजनों को आश्चर्य इसलिए हो रहा था कि एक लाख साधकों की ही सीमा क्यों? उस समय गायत्री परिवार के सदस्यों की संख्या पंद्रह-बीस लाख के आस-पास थी। सामान्य दृष्टि में उचित तो यह है कि साधकों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए।

एक लाख साधकों का मंडल बनाने और उन्हें विशिष्ट साधना में नियोजित करने की सूचना आश्रम के बाहर विभिन्न स्थानों, शहरों में काम कर रहे कार्यकर्त्ताओं तक भी पहुँची। गुरुदेव ने उस आयोजन में कहा था कि अब से पचास वर्ष पहले उन्होंने अपनी मार्गदर्शक सत्ता की प्रेरणा से और उसी के सान्निध्य में चौबीस वर्ष तक चलने वाले चौबीस महापुरश्चरण आरंभ किए थे। उसी मार्गदर्शक सत्ता का संदेश है कि एक लाख साधकों को उस स्तर के तो नहीं, लेकिन एक विशिष्ट साधना प्रयोग में नियोजित किया जाए। इस प्रयोग से एक लाख साधकों द्वारा सम्मिलित रूप से 24 लाख मंत्रों के 24 महापुरश्चरण प्रतिदिन संपन्न किए जाने थे। गुरुदेव ने कहा था कि जितनी साधना उन्होंने 24 वर्ष में की थी, उतनी साधना प्रतिदिन हो जाया करेगी। यह अभियान आगामी वसंत पंचमी (5 फरवरी, 1976) से आरंभ किया जाना था।

विशिष्ट साधना प्रयोग के लिए गुरुदेव ने एक विशेष नाम दिया था। 'स्वर्ण जयंती वर्ष की विशेष साधना।' स्वर्ण जयंती वर्ष नाम पचास साल पहले गुरुदेव की आरंभ की गई महापुरश्चरण शृंखला को ध्यान में रखकर दिया गया था। इस विशिष्ट संबोधन का उद्देश्य प्रतिदिन होने वाले महापुरश्चरणों में पर्व समारोह का उत्साह भरना भी था। गुरुदेव के इस आह्वान और प्रयोग की सूचना क्षेत्रों में फैलते ही परिजनों के पत्र आने लगे। कुछ परिजन तो अगले दो-चार दिनों में शांतिकुंज आने लगे। वे पत्रों द्वारा या खुद यहाँ आकर पूछ रहे थे कि एक लाख साधकों में उनका भी नाम है या नहीं। यदि नहीं है तो आग्रह था कि उनका नाम भी सम्मिलित किया जाए।

एक लाख साधकों का चयन वसंत पंचमी तक कर लिया जाना था। गुरुदेव ने कहा था कि चयन कर लिया गया है। यह अभियान हिमालय के गुह्यप्रदेश में विश्व के आध्यात्मिक और उससे प्रेरित लौकिक क्रियाकलापों का संचालन कर रही दिव्य शक्तियों द्वारा संचालित किया जा रहा है। वे स्वयं सिर्फ मार्गदर्शन करते हुए दिखाई भर दे रहे हैं। एक लाख साधकों के चुनाव, साधन, अनुष्ठान, संरक्षण और दोष-परिमार्जन की व्यवस्था हिमालय के उन्हीं दिव्य पुरुषों द्वारा की जा रही है। जरूरी नहीं कि एक लाख साधक ही यह साधना क्रम अपनाएँ। जिनकी भी निष्ठा और उत्कंठा हो, वे इस उपासना-अनुष्ठान में लगें। सफलता और सार्थकता की कसौटी यह है कि साधना क्रम बिना रुके चलना चाहिए और वह संपन्न भी नियत समय पर हो जाए।

साधना क्रम का विधान अगले महीने जनवरी, 1976 की अखण्ड ज्योति में भी छपा। इससे स्पष्ट हो गया कि विधि-विधान में गुह्य रखने जैसी कोई प्रक्रिया नहीं है। वह सबके लिए खुला है। नियत समय पर, निश्चित समय तक इसे संपन्न करना आवश्यक था। समय सूर्योदय से पूर्व करीब दो घड़ी अर्थात पैंतालीस मिनट पहले आरंभ करने का था। सूर्य उदय होने तक इसे संपन्न कर लिया जाना चाहिए ।इस साधना विधान को अपनाने के लिए कार्यकर्त्ताओं में अद्‌भुत उत्साह उभरा।

समाचार मिल रहे थे कि शाखाओं में अखण्ड ज्योति के जनवरी, 76 अंक में प्रकाशित 'अपनों से अपनी बात' स्तंभ का गीता-रामायण की तरह पाठ किया गया है। जिन लोगों के पास पत्रिका नहीं पहुँचती थी, वे भी विशेष साधना में भागीदार बने। उन्होंने अपने लिए 'स्वर्ण जयंती वर्ष की विशेष साधना' लेख की फोटो प्रतियाँ तैयार करा लीं। जिनके लिए यह संभव नहीं हो सका उन्होंने लेख की नकल कर प्रतिलिपि बना ली। वसंत पंचमी में अभी समय था। साधना का विधिवत् आरंभ उसी दिन होना था, लेकिन उत्साही साधकों ने विधि का पता चलते ही अभ्यास आरंभ कर दिया। यह मान ही लिया कि विशिष्ट साधकों की मंडली में उनका नाम तो शुमार होगा ही।

पश्चिम बंगाल में दक्षिणेश्वर मंदिर के पास कृष्णानंद चट्टोपाध्याय नामक कार्यकर्त्ता गीता जयंती पर शांतिकुंज में ही थे। वहाँ उन्होंने गुरुदेव का संदेश सुना था। शिविर से लौटते ही उन्होंने साधना आरंभ कर दी। विधि-विधान तब मालूम नहीं हुआ था। कृष्णानंद ने दो वर्ष पहले प्राण प्रत्यावर्तन साधना शिविर में भाग लिया था। उस समय गुरुदेव जिस साधना का अभ्यास करा रहे थे, उसे ही जारी रखा। बीच में थोड़ी शिथिलता आई थी, उसे दूर कर लिया। महाशिवरात्रि के दिन उन्होंने अपने आप को स्वर्ण जयंती साधना में निरत होने वाले साधकों की मंडली का सदस्य मान लिया और प्रातः-सायं, दोनों समय भगवान सविता देव की साक्षी में भगवती गायत्री महाशक्ति की आराधना करने लगे। जब तक नया विधान मालूम नहीं हो गया, तब तक इसे ही चलाते रहे। इस बीच कृष्णानंद को एक अनूठा अनुभव हुआ।

मान्यता के मोहताज नहीं

मंदिर के पास जिस बस्ती में कृष्णानंद रहते थे, वहाँ पास में एक बगीची थी। बगीची में एक छोटा-सा मंदिर भी था। प्रांगण में भजन-कीर्तन के कार्यक्रम होते रहते थे। कभी कभार सत्संग आदि का आयोजन भी होता। महाशिवरात्रि बीते तीन-चार दिन हुए होंगे। बगीची में कुछ भक्त श्रद्धालु एकत्र हुए। वे किसी संत में दैवी गुणों की चमत्कारी क्षमताओं की संभावना के बारे में चर्चा कर रहे थे। कुछ लोगों का मानना था कि चमत्कारी क्षमताएँ होती हैं और कुछ का कहना था कि नहीं होतीं। चर्चा बढ़ते-बढ़ते विवाद में बदल गई और एक बहस का रूप धारण कर गई। उपस्थित श्रद्धालु जोर-जोर से बोलने लगे और अपना पक्ष बताने लगे। विवाद और जोर पकड़ता कि उस स्थल पर एक साधु ने प्रवेश किया और लगभग फटकारते हुए से कहा—"यह बहस बंद करो। ईश्वरीय गुणों की संभाव्यता के बारे में चर्चा से क्या लाभ ?"

उन साधकों या बुद्धिजीवियों में से एक ने कहा—"हम ईश्वर के दिव्य गुणों की नहीं, उत्तरांचल में विद्यमान एक संत के गुणों की चर्चा कर रहे हैं। उनके बारे में बहुत लोगों का मानना है कि वे अलौकिक महापुरुष हैं और संकल्प मात्र से कुछ भी करने में सक्षम हैं।"

सुनकर उन साधु ने कहा—"बिना जाने-समझे उनके या किसी के भी गुण-दोषों को बातचीत से कैसे समझा जा सकता है या तो चुप रहो अथवा परखना है तो उनसे व्यवहार बनाकर परखो।" फिर वे साधु कुछ देर रुके और चुप्पी तोड़ते हुए बोले—"भगवान अपनी उपस्थिति का भान कराने और अपनी सृष्टि को सुंदर बनाने के लिए साधु-संतों और दिव्य आत्माओं के रूप में मानवीय शरीर का उपयोग करते

हैं। वे किसी की मान्यता और अस्वीकृति के मोहताज नहीं होते।''

कहकर उन साधु ने आँखें बंद कीं और कुछ क्षण बाद खोलीं। उन्होंने संभवत: अपने इष्ट या गुरु का स्मरण किया था। इस स्मरण के बाद फिर उन्होंने अपनी बात शुरू की। उन्होंने दो-तीन उदाहरणों और संस्मरणों से दिव्य आत्माओं से मिल सकने वाले सहयोग के बारे में बताया। तभी बगीची में एक दिगंबर संन्यासी का आगमन हुआ। उन संन्यासी को बगीची में मौजूद साधकों ने पहले कभी नहीं देखा था। कुछ साधक दक्षिणेश्वर स्थित काली मंदिर भी नियमित रूप से जाया करते थे। वहाँ भी इन संन्यासी को कभी नहीं देखा था। ऊँचा पूरा शरीर, बरफ जैसे सफेद बाल, तपे हुए गेहुँए रंग का ताँबे जैसा शरीर और तेज से भरी हुई आँखें कि जिस पर नजर पड़ जाए, उसे रोमांचित कर दें। (क्रमश:)

श्रेष्ठी अतुल तथागत के धम्म संघ को भरपूर दान देते थे। एक बार वे अपने नगर के पाँच सौ गणमान्य नागरिकों को लेकर तथागत के दर्शनों हेतु पहुँचे। संघ में आने पर पहले उन्हें महास्थविर रेवत से मिलने के लिए कहा गया। रेवत ने इन सबको देखकर नमन किया, पर कुछ बोले नहीं।

श्रेष्ठी अतुल रेवत के इस व्यवहार पर क्रोधित हो अपने साथियों के साथ वहाँ से बाहर आ गए। फिर इनकी भेंट स्थविर सारिपुत्र से हुई। सारिपुत्र ने इन्हें सब विस्तार से समझाया, पर अतुल व उसके साथ के लोग क्रोधित होते गए। तब स्थविर सारिपुत्र ने इन सबको स्थविर आनंद के पास भेज दिया। उन्होंने इन सबको कम शब्दों में बातें समझाईं, पर ये सब क्रोधित ही रहे। फिर आनंद इनको भगवान बुद्ध के पास ले गए।

भगवान के पास पहुँचते ही श्रेष्ठी अतुल क्रोधपूर्वक बोले—''भगवान! आपके शिष्यों को बिलकुल भी समझ नहीं। हम सब रेवत के पास गए, वे बिलकुल मौन रहे। हम कैसे कुछ समझते। स्थविर सारिपुत्र इतना ज्यादा बोले कि हमारे सिर पर से बह गया। स्थविर आनंद ने सब बातें सूत्र रूप में कहीं। हमें कुछ समझ में नहीं आया।''

भगवान सब कुछ सुनकर बोले—''हे अतुल! यदि जीवन में समझने योग्य कोई बात है तो वह यह है कि इस कोलाहल के मध्य आंतरिक शांति को प्राप्त कैसे किया जा सकता है। परनिंदा तो सांसारिक कोलाहल को और बढ़ाएगी ही। तुम निंदा छोड़ो। ध्यान करो। इसी में तुम्हारा कल्याण है।''

नालंदा का स्वर्णिम इतिहास

आज संसार के संपन्न और सुसभ्य कहलाने वाले देशों के लोग जब जंगलों में भटकते हुए अंधकारपूर्ण जीवन जी रहे थे, उस समय भारत में उच्च कोटि के सांस्कृतिक केंद्र और विद्यापीठ विकसित थे। तक्षशिला, उज्जैन और नालंदा जैसे ज्ञान-विज्ञान के अनेक प्रतिष्ठित केंद्र यहाँ स्थापित थे। यहाँ देश के विभिन्न हिस्सों में जैसे उत्तर में तक्षशिला, मध्य में उज्जैन और पूर्व में नालंदा जैसे विश्वप्रसिद्ध संस्थानों में उच्च कोटि की शिक्षा-दीक्षा प्रदान की जाती थी। मगध साम्राज्य के सम्राट कुमारगुप्त ने शिक्षा-प्रचार और विभिन्न विधाओं के विकास के लिए नालंदा की स्थापना की थी। ऐसे लिखित प्रमाण मिलते हैं कि तथागत बुद्ध के जीवन काल में भी नालंदा एक सांस्कृतिक केंद्र था, किंतु उनके समय में विश्वविद्यालय की स्थापना नहीं हुई थी।

विश्वविद्यालय और एक महान सांस्कृतिक केंद्र के रूप में नालंदा का प्रमाणिक विवरण चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा वृत्तांतों से प्राप्त होता है। वह चीनी यात्री जिज्ञासु था और हर चीज को जानने की चाह रखता था। उसने तत्कालीन भारत के कई नगरों तथा सांस्कृतिक केंद्रों की यात्राएँ की थीं। कन्नौज के सम्राट हर्षवर्धन के दरबार में कई महीने रहकर ह्वेनसांग ने संस्कृत तथा पाली भाषाओं की जानकारी प्राप्त की एवं फिर वैशाली तथा बोधगया होते हुए नालंदा पहुँचा। करीब 635 ईसवी के आस-पास वह नालंदा में विद्याध्ययन करता रहा। फिर वह चीन चला गया।

पाँच वर्षों के अंतराल के बाद वह पुन: भारत आया और दो-तीन वर्ष रहकर उसने वैदिक साहित्य तथा बौद्ध धर्मग्रंथों का अध्ययन तथा अनुवाद किया। उसके वृत्तांत के अनुसार नालंदा में विशालकाय विश्वविद्यालय परिसर था, जिसमें पाँच संघाराम थे। एक नए संघाराम का निर्माण कार्य सम्राट हर्षवर्धन की ओर से तब किया जा रहा था। सभी संघाराम एक ऊँची दीवार से घिरे थे। इनके मध्य में विद्यापीठ स्थित था। ऊँची दीवारों से सटे आठ आयताकार प्रकोष्ठ थे, जिनमें कक्षाएँ लगती थीं और आचार्यों के व्याख्यान होते थे। दूसरी ओर कई वेधशालाएँ और कार्यशालाओं के भवन थे, जिनमें तरह-तरह के यंत्र लगे थे। उनसे जलवायु के अलावा ग्रह-नक्षत्रों की जानकारी प्राप्त की जाती थी। विहार से अलग एक चार मंजिला छात्रावास का भवन था, जिसमें पाँच हजार से अधिक छात्रों के निवास की व्यवस्था थी।

ऐसा अनुमान है कि तत्कालीन नालंदा विश्वविद्यालय में 1500 से अधिक विद्वान, आचार्य और प्राचार्य थे, जो वेद-पुराण और बौद्ध दर्शन के अलावा गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, चिकित्सा विज्ञान, न्याय दर्शन, चित्रकला आदि विभिन्न विषयों की शिक्षा देते थे। उस समय विश्वविद्यालय के प्रधानाचार्य उद्भट विद्वान शीलभद्र थे। उन्हें सोलह भाषाओं का ज्ञान था और वे अनेक विधाओं के पारंगत आचार्य थे।

गौरवमयी नालंदा विश्वविद्यालय ने अनेक ऐसे दार्शनिकों को प्रशिक्षित किया, जो आज भी महिमामंडित हैं। इन विद्वानों में अश्वघोष, नागार्जुन, प्रभाकर मित्र, असंग, शीलभद्र, पद्मसंभव, वसुवधु आदि उल्लेखनीय हैं। इस विशाल विश्वविद्यालय में रहने वाले आचार्यों, विद्यार्थियों तथा कर्मचारियों की संख्या दस हजार से ऊपर थी। उनके लिए मगध सम्राट ने रहने और भोजन की विशेष व्यवस्था की थी। वहाँ की व्यवस्था नालंदा के चारों ओर एक सौ गाँवों से प्राप्त आय से की जाती थी।

ह्वेनसांग के बाद एक दूसरा चीनी यात्री इंत्सिंग भी नालंदा आया था। उसने नालंदा में ही रहकर शिक्षा और विशेषज्ञता प्राप्त की थी। उसने अपने विवरण में नालंदा विश्वविद्यालय में स्थित प्रमुख पुस्तकालयों का विशेष रूप से उल्लेख किया है। उसके अनुसार वहाँ तीन मुख्य पुस्तकालय थे—रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरंजक। इनमें सबसे ज्यादा बहुमूल्य ग्रंथ और पांडुलिपियाँ सिलसिलेवार रखे हुए थे। तब पुस्तकालयाध्यक्ष कोई वरिष्ठ आचार्य होता था। इन पुस्तकालयों में पांडुलिपियाँ तथा प्रतिलिपियाँ तैयार करने में अनेक भिक्षु तथा कर्मचारी कार्यरत रहते थे।

ह्वेनसांग ने नालंदा में रहकर करीब सात सौ ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ तैयार कीं और इन्हें ज्ञान की बहुमूल्य धरोहर मानकर अपने देश चीन ले गया। उसी परंपरा में इंत्सिंग ने

भी प्रतिलिपि लेखन का कार्य किया और वैदिक तथा बौद्ध साहित्य के चार सौ ग्रंथों की प्रति सहेजकर चीन ले गया, लेकिन हर उत्कर्ष के पीछे उसका पराभव छिपा रहता है। संपूर्ण संसार में ज्ञान की प्रखर ज्योति फैलाने वाले विद्याकेंद्र का भी अचानक पतन हुआ। सन् 1200 ईसवी में मुहम्मद बखतियार खिलजी ने मगध पर आक्रमण किया और राजधानी पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) के अलावा कई मंदिरों, मठों और बौद्ध विहारों को ध्वस्त कर दिया।

उसी अभियान में नालंदा महाविहार और विश्वविद्यालय को आक्रमणकारी ने बुरी तरह से ध्वस्त कर दिया। यही नहीं मूर्तिपूजा के विरोधी उसके सैनिकों ने विश्वविद्यालय के पुस्तकालय को भी नहीं छोड़ा। उन्होंने पुस्तकालय में आग लगा दी, जिससे महीनों तक वहाँ की पुस्तकें और पांडुलिपियाँ धूँ-धूँ करके जलती रहीं। काल का क्रूर चक्र चलता रहता है। कभी उत्थान तो कभी पतन। इसी क्रम में प्रायः पुनर्निर्माण की स्थिति भी आती है।

इसी क्रम में प्राचीन नालंदा विश्वविद्यालय के सैकड़ों साल बाद विख्यात पुरातत्त्वेत्ता सर कनिंघम ने इस प्राचीन विद्यापीठ के स्थल को खोज निकाला और प्रकांड इतिहासकार पं. हीरानंद शास्त्री ने अथक प्रयास करके नालंदा के प्राचीन ध्वंसावशेष को सन् 1916 में ढूँढ़ निकाला। यही आज नालंदा के नाम से मशहूर है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद केंद्र तथा राज्य सरकार का ध्यान इस ऐतिहासिक धरोहर की ओर गया। सन् 1951 में नवनालंदा महाविहार की स्थापना की गई, जिसमें बौद्ध दर्शन और पाली भाषा तथा साहित्य पर अनुसंधान कार्य आरंभ किए गए। बाद में जापान, चीन, श्रीलंका और इंडोनेशिया ने भी इस संस्थान के विकास में यथोचित योगदान दिया। अब नवनालंदा विहार को विश्वविद्यालय के समकक्ष मान्यता प्रदान की गई है। वहाँ भारत सरकार ने विशाल भवन तथा सुंदर संग्रहालय का निर्माण किया है।

नालंदा अब केवल प्राचीन विश्वविद्यालय का ध्वंसावशेष नहीं है, बल्कि एक सुंदर पर्यटन केंद्र के रूप में भी विकसित हो चुका है। यहाँ देश-विदेश से हजारों पर्यटक प्रतिवर्ष भ्रमण के लिए आते हैं। बिहार की राजधानी पटना से करीब 110 किलोमीटर की दूरी पर स्थित नालंदा एक दर्शनीयस्थल के रूप में भी अब विकसित हो गया है। आज की आवश्यकता है कि फिर से नालंदा जैसे ज्ञानकेंद्रों की स्थापना हो, जहाँ पर विद्वानों एवं प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को गढ़ा जा सके। ❑

एक फकीर को एक सोने की मोहर मिली। उसने यह निश्चय किया कि जो सबसे गरीब होगा, उसे ही यह मोहर दूँगा। बहुत ढूँढ़ने पर उसे कोई गरीब व्यक्ति नहीं मिला। एक दिन उसे पता लगा कि अपने देश का राजा पड़ोसी देश के राज्य को छीनने जा रहा है। फकीर ने वह मोहर राजा को दे दी। राजा ने इसका कारण पूछा तो वह बोला—"हमने इस मोहर को सबसे गरीब व्यक्ति को देने का निश्चय किया था, इसलिए आपको दी है।"

राजा बोला—"मेरे पास इतना धन, राज्य, सेना आदि सब कुछ है फिर मैं सबसे गरीब कैसे हुआ?" फकीर बोला—"आपके पास इतना सब कुछ होते हुए भी आप पड़ोसी राज्य को हड़पने जा रहे हैं, फिर आपसे ज्यादा गरीब कौन होगा?" राजा को अपनी भूल का एहसास हो गया। उसने सेना को लौटने के आदेश दिए।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 151

कैंसर की मनोआध्यात्मिक चिकित्सा

हमारे व्यक्तित्व की मनोशारीरिक संरचना ऐसी है कि यदि शरीर में कोई परेशानी है तो उसका सीधा प्रभाव मन पर तथा मन की परेशानियों का प्रभाव शरीर पर पड़ता है। जब शरीर किसी गंभीर-घातक बीमारी से ग्रस्त होता है तो मन पर भी इसका दुष्प्रभाव पड़ता है और व्यक्ति में चिंता, अवसाद, तनाव, कुंठा, आत्मग्लानि, निराशा, नकारात्मकता जैसी मनोविकृतियाँ पनपने लगती हैं। हृदय रोग, रक्तचाप, डायबिटीज, कैंसर, अस्थमा जैसी अनेक ऐसी बीमारियाँ हैं, जो शरीर के साथ-साथ मानसिक अवस्था को भी बुरी तरह प्रभावित कर देती हैं।

यद्यपि इन शरीरगत घातक रोगों के प्रबंधन एवं उपचार के लिए आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने प्रभावी तकनीकों एवं दवाइयों को खोजने में सफलता अवश्य प्राप्त कर ली है, परंतु वे तकनीकें एवं दवाइयाँ सर्वथा निरापद नहीं हैं। इनके दुष्परिणामों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। कई बार उपचार से रोग तो नियंत्रित हो जाता है, परंतु उपचार के दुष्परिणाम इतने घातक सिद्ध होते हैं कि व्यक्ति जीवन भर इनसे उबर नहीं पाता है।

इन उपचार-तकनीकों का दूसरा पहलू भी चिंता और चिंतन का विषय है। वह यह कि आधुनिक उपचार पद्धतियाँ शरीर के रोग का तो उपचार-प्रबंधन करती हैं, परंतु उस रोग के दौरान उत्पन्न मानसिक परेशानियों और मनोरोगों के समाधान की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। परिणामस्वरूप चिंता, तनाव, अवसाद, निराशा जैसी विकृतियाँ व्यक्ति के जीवन को नरक बना देती हैं। अत: इस प्रकार की समस्याओं की रोक-थाम, उपचार व प्रबंधन की दिशा में सार्थक प्रयास समय की माँग है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के नैदानिक मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत समय की इस माँग को पूरा करने की दिशा में पहल करते हुए एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है। यह शोधकार्य विशेष रूप से कैंसर जैसी घातक बीमारी और उसके उपचार-प्रक्रिया के दौरान असह्य पीड़ाओं-परेशानियों से प्रभावित मानसिक अवस्था के प्रबंधन की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण व प्रभावी तकनीकों को प्रस्तुत करता है। यह शोधकार्य सन् 2017 में शोधार्थी प्रज्ञा सहारे द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण में एवं प्रतिकुलपति जी के निर्देशन एवं डॉ० संध्या रानी मोहंती के सह-निर्देशन में पूरा किया गया है।

इस शोध अध्ययन का विषय है—**'इफेक्ट्स ऑफ स्पीरिचुअली ऑग्मेन्टेड कॉग्नेटिव रिस्ट्रक्चरिंग ऑन एन्जाइटी एंड डिप्रेसिव सिंप्टम्स अमंग वुमन विद ब्रेस्ट कैंसर।'** भारत ही नहीं, अपितु पूरी दुनिया में महिलाओं में स्तन कैंसर का रोग होता है। विभिन्न शोधों में यह भी पाया गया है कि स्तन कैंसर से ग्रस्त महिलाओं में चिंता, तनाव, अवसाद, भ्रम, भय जैसी मानसिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। शोधार्थी ने इन्हीं समस्याओं के समाधान को वैज्ञानिक रीति से खोजने का प्रयास अपने इस प्रयोगात्मक शोध में किया है।

प्रयोगात्मक अध्ययन के लिए शोधार्थी ने चोइथराम हास्पिटल एवं रिसर्च सेंटर, इंदौर, मध्यप्रदेश से उद्देश्यपरक चयन विधि का प्रयोग कर 30 महिलाओं को प्रयोग हेतु चयनित किया। इन सभी की उम्र 30 से 60 वर्ष के बीच थी एवं वे कैंसर का नियमित उपचार करा रही थीं। साथ ही यह भी देखा गया कि कैंसर जैसी गंभीर बीमारी से संघर्ष के दौरान उनकी मानसिक अवस्था प्रभावित हुई। प्रयोगात्मक अध्ययन प्रारंभ करने से पूर्व चयनितों की मानसिक स्वास्थ्य की स्थिति का मापन करने के लिए जिन शोध-उपकरणों का प्रयोग किया गया, वे हैं—बेक डिप्रेशन इन्वेन्ट्री (BDI-II), बेक एन्जाइटी इन्वेन्ट्री (BAI), डिस्फंक्शनल एटिट्यूड स्केल(DAS)।

उक्त शोध-उपकरणों द्वारा परीक्षण के पश्चात शोधार्थी द्वारा प्रयोग आरंभ किया गया। प्रयोग की अवधि दस सप्ताह की रखी गई, जिसमें प्रतिसप्ताह दो सत्र अर्थात कुल 20 सत्रों की चिकित्सा प्रत्येक रोगी को प्रदान की गई। एक चिकित्सा सत्र का समय एक घंटा निर्धारित किया गया।

सप्ताह के निर्धारित किए गए दो सत्रों में पहला सत्र कॉग्निटिव बिहेवियरल थेरेपी (CBT) का एवं दूसरा सत्र योगनिद्रा विधि के अभ्यास का था। दोनों सत्रों का समय एक-एक घंटे रखा गया।

प्रयोग की अवधि में रोगियों को शोधार्थी द्वारा अपने प्रयोगात्मक सत्रों की आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण जानकारी समय-समय पर प्रदान की जाती रही। इस अध्ययन में संज्ञानात्मक पुनर्गठन विधि (CBT) के साथ-साथ स्वाध्याय, आत्मबोध, तत्त्वबोध जैसी आध्यात्मिक तकनीकों का अभ्यास भी सम्मिलित किया गया। रोगियों के द्वारा प्रयोग-अवधि के दैनिक क्रम में जिन प्रयोगाभ्यासों का निर्देशन दिया गया, वे हैं—अपने दैनिक क्रियाकलापों का निर्धारण एवं निरीक्षण, समस्याओं के समाधान की कुशलता, निर्णय क्षमता को विकसित बनाने का अभ्यास, स्थिर और शांत रहने की कुशलता तथा आध्यात्मिक तकनीकों का अभ्यास।

आध्यात्मिक तकनीक के रूप में अपनाई गई स्वाध्याय विधि के अंतर्गत परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा लिखित पाँच पुस्तकों को लिया गया—(1) हारिए न हिम्मत, (2) मन के हारे हार, मन के जीते जीत, (3) हँसते-खेलते जीवन जिएँ, (4) मन की प्रचंड शक्ति और मनोविज्ञान तथा (5) मनोविकार- सर्वनाशी शत्रु।

प्रत्येक दो सत्रों के उपरांत एक-एक पुस्तक को प्रयोगात्मक मूल्यांकन की प्रक्रिया में सम्मिलित किया गया। इसी तरह परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रवर्तित आत्मबोध साधना (प्रातः 10 से 15 मिनट) एवं तत्त्वबोध-साधना (रात्रि 10 से 15 मिनट) का नियमित दस सप्ताह तक अभ्यास कराया गया।

अध्ययन की अवधि पूरी होने पर शोध-उपकरणों द्वारा परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया। तथ्यों के विश्लेषण एवं विवेचन के क्रम में शोधार्थी ने शोध प्रयोग के परिणामों में यह पाया कि कैंसर पीड़ित महिलाओं के चिंता एवं अवसाद स्तर पर अध्यात्म तकनीकों से युक्त संज्ञानात्मक चिकित्सा का सकारात्मक एवं सार्थक प्रभाव पड़ता है।

इसके साथ ही यह भी देखा गया कि इस प्रयोग की तकनीकें संपूर्ण व्यक्तित्व पर सकारात्मक प्रभाव डालती हैं एवं आंतरिक क्षमताओं को दृढ़ता प्रदान करती हैं। शोध परिणामों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अध्यात्म संवर्द्धित संज्ञानात्मक पुनर्गठन विधि स्तन कैंसर से पीड़ितों की चिंता और अवसाद के स्तर को कम करने एवं व्यक्तित्व के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक स्तर का प्रबंधन करने की एक प्रभावी एवं कारगर तकनीक है।

उल्लेखनीय है कि इस शोध अध्ययन में शोधार्थी को जो सार्थक परिणाम प्राप्त हुए हैं, उनके पीछे मुख्य कारण प्रयोग में सम्मिलित विशेष आध्यात्मिक तकनीकें हैं। इस प्रयोग में अपनाई गई सभी उपचारात्मक तकनीकें स्वयं में विशिष्ट हैं और संपूर्ण व्यक्तित्व को रूपांतरित एवं संतुलित करने में सक्षम हैं। अध्यात्म को तो व्यक्तित्व की समग्रता का विज्ञान कहा गया है। इस प्रयोग में सम्मिलित आध्यात्मिक तकनीकें; जैसे—स्वाध्याय, आत्मबोध, तत्त्वबोध, साधना,

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥

—ऋग्वेद (5/51/15)

अर्थात हे मनुष्यो! सूर्य, चंद्रमा जिस प्रकार नियमित रूप से अपने निर्धारित पथ पर चलते रहते हैं, उसी प्रकार तुम्हें भी न्याय का मार्ग नहीं छोड़ना चाहिए।

योगनिद्रा आदि ऐसी विधियाँ हैं, जिनके नियमित अभ्यास से व्यक्ति आरोग्य की प्राप्ति कर लेता है साथ ही वह चेतना के उच्चतम स्तर तक स्वयं के जीवन को विकसित करने में भी सफल होता है।

वर्तमान समय में कैंसर ही नहीं, वरन सैकड़ों तरह की ऐसी शारीरिक और मानसिक समस्याएँ दिखाई देती हैं, जिनका समग्र समाधान आधुनिक चिकित्सा विज्ञान नहीं दे पाता है। ऐसे में योग चिकित्सा, आयुर्वेदिक चिकित्सा एवं मनोचिकित्सा के साथ आध्यात्मिक तकनीकों का प्रयोग कर रोगों की चिकित्सा का सार्थक, प्रभावी एवं समग्र समाधान खोजना देव संस्कृति विश्वविद्यालय में संपन्न होने वाले अनुसंधान कार्यों की विशेषता रही है। यह एक ऐसा ही शोधकार्य है। ❑

ऐसे बनें भगवान के हाथों का यंत्र

'वह अमीर, अमीर ही क्या, जिसमें अमीरी न हो और वह फकीर, फकीर ही क्या, जिसमें फकीरी न हो।'— यह उक्ति स्वामी पवित्रानंद के जीवन से पूर्णत: प्रस्फुटित होती थी। पवित्रानंद का पूर्व नाम अमीरचंद सेन था। अमीरचंद के पास अथाह संपदा थी। नौकर-चाकर, घोड़े-हाथी, सोना-चाँदी, हीरे-माणिक्य आदि की कोई कमी उन्हें न थी। उनका जीवन पूरे शानोशौकत से बीत रहा था। वे काफी पढ़े-लिखे भी थे। उनके पास अच्छी-खासी बड़ी उपाधियाँ भी थीं।

एक दिन उनके नगर में एक स्वामी जी का आगमन हुआ। अलौकिक तेज उनके रोम-रोम से प्रस्फुटित हो रहा था। नगर भ्रमण करते हुए अचानक अमीरचंद के घर के पास वे रुक गए या यों कहें कि ईश्वर की प्रेरणा से उनके पाँव वहीं ठिठक गए। उनके मुख से 'अलख निरंजन' की मधुर ध्वनि उद्धृत हुई। यह मधुर ध्वनि अमीरचंद सेन के कानों में पड़ी और कानों से होती हुई क्रमश: उनके हृदय व आत्मा में उतर गई।

अमीरचंद सेन अपनी हवेली से बाहर निकले। उन्होंने स्वामी आचार्यानंद के दिव्य तेज को देखा तो देखते ही रह गए। अब से पूर्व उस नगर में न जाने साधु-फकीर के वेश में कितने लोग आए-गए थे, पर अमीरचंद सेन के हृदय में स्वामी जी को देखकर ऐसी हलचल शायद ही पहली बार हुई थी; और हो भी क्यों न? स्वामी आचार्यानंद सिद्ध महात्मा जो थे। वर्षों की कठिन तपस्या के बाद उन्हें भगवद्दर्शन हुआ था। उनका आध्यात्मिक ओज, तेज व वर्चस् देखते ही बनते थे। अपने गुरु के आदेशानुसार वे लोक-कल्याण हेतु ही भ्रमण किया करते थे और आज उसी क्रम में वे अमीरचंद के नगर में पहुँचे थे।

स्वामी आचार्यानंद जी को देखकर अमीरचंद के हृदय में काफी उथल-पुथल थी कि स्वामी जी नगर में किसी के घर पर नहीं गए, पर मेरे यहाँ ही क्यों पधारे? मैं तो भोग-विलास में जीवन जीने वाला एक सामान्य-सा प्राणी हूँ। फिर उन्होंने मेरे उपर ही इतनी कृपा क्यों की?

यह सोच-सोचकर अमीरचंद भावविह्वल हो गए और स्वामी जी के चरणों में गिर पड़े। स्वामी जी ने उन्हें हृदय से लगा लिया और बोले—"वत्स! तुम्हारा जीवन भोग-विलास व अमीरी का प्रदर्शन करने के लिए नहीं हुआ है। तुम्हें तो भगवान लोक-कल्याण हेतु अपना यंत्र बनाना चाहते हैं। उन्हीं की प्रेरणा से तो मैं यहाँ आ पहुँचा हूँ। उनकी इच्छा न होती तो मैं यहाँ आता ही क्यों?"

स्वामी जी ने आगे पूछा—"क्या तुम अपना सुख-वैभव, अमीरी, मान-सम्मान आदि त्यागकर भगवान का यंत्र बनना चाहोगे? क्या तुममें ईश्वर के मार्ग पर चलने की अभीप्सा है या अभी भोग-विलास में और जीवन व्यतीत करना चाहते हो?" ईश्वर की कृपा-प्रेरणा से अमीरचंद ने अपने आप को स्वामी जी के चरणों में समर्पित कर दिया और बोले—"स्वामी जी! अब मैं अमीरचंद नहीं, बल्कि पूरी तरह से आपका हूँ। मैं अपना सब कुछ परित्याग करने को तैयार हूँ।" अमीरचंद अपनी अपार संपदा का परित्याग कर स्वामी जी के साथ उनकी कुटिया पर जा पहुँचे।

अगले ही दिन शिवरात्रि के पावन अवसर पर आचार्यानंद जी ने अमीरचंद को गुरुदीक्षा दी और उन्हें नया नाम दिया—'स्वामी पवित्रानंद।' सेठ अमीरचंद सेन अब स्वामी पवित्रानंद बन चुके थे और वह भी सिर्फ नाम से नहीं, बल्कि अपने संपूर्ण कर्मों से भी। गुरु के मार्गदर्शन में उनकी तप-साधना चल पड़ी। त्रिकाल संध्यावंदन, नित्य शास्त्रों का स्वाध्याय, गुरु की सेवा व आश्रम में आए हुए अतिथियों की सेवा करना आदि उनका नित्य का क्रम था। अपने घर पर विविध प्रकार के व्यंजन खाने वाले अमीरचंद अब शाकाहार व अल्पाहार करने लगे थे।

सांसारिक विषयों का चिंतन करने वाले अमीरचंद अब ब्रह्मचिंतन करने लगे थे। सुवर्ण सिंहासन पर बैठने वाले अमीरचंद अब जमीन पर कुशा के आसन पर ध्यान में बैठकर शांति और आनंद अनुभव करने लगे थे। हीरे-माणिक्य, सोने-चाँदी से सुसज्जित शय्या पर शयन करने

वाले अमीरचंद अब धरती पर शयन कर ही गहरी व मीठी निद्रा का आनंद लेने लगे थे। भौतिक संपन्नता तो उनके पास अब न थी, किंतु आत्मिक संपन्नता का अभाव उनके पास न रहा। गुरु के मार्गदर्शन में वे साधना के नित्य नए सोपान चढ़ने लगे।

हिमालय की मनोरम वादियों में स्थित आश्रम में साधना, संगीत व शिविरों की शृंखलाएँ अनवरत रूप से चलने लगीं। आश्रम-संचालन की समस्त जिम्मेदारियों को अपने हाथों में लेकर उन्होंने मानो अपने गुरु को निश्चिंत कर दिया। गुरु भी ऐसे सच्चे शिष्य को पाकर भावविह्वल थे। एक दिन अचानक पवित्रानंद की तबीयत खराब हो गई। वे महीनों बिस्तर पर ही पड़े रहे। आश्रम के कुछ साधकों ने उन्हें कई प्रकार के औषधीय उपचार दिए, पर उनकी भयंकर पीड़ा जाने का नाम नहीं ले रही थी।

पवित्रानंद बड़े दुर्बल हो चले थे। कभी-कभी उनकी पीड़ा इतनी असहनीय हो जाती कि उनकी आँखों से आँसू बहने लगते। लंबे समय से कष्ट सहते पवित्रानंद ने आखिरकार अपने गुरु के समक्ष माथा टेक कर सिसकियाँ भरते हुए पूछ ही लिया—"गुरुदेव! आखिर भगवान मुझे इतना कष्ट क्यों दे रहे हैं?" स्वामी जी बोले—"वत्स! इन कष्टों के माध्यम से भी तुम तप ही कर रहे हो; क्योंकि इनसे तुम्हारी चेतना परिष्कृत हो रही है। इसलिए इन्हें सहते जाओ।"

शिष्य को ढाढ़स बँधाते हुए स्वामी जी आगे बोले—"वत्स! तुम्हारे अतीत के संचित कर्म अब प्रारब्ध बनकर प्रकट हो रहे हैं। भगवान के मार्ग पर चलते हुए कठिन तप-साधना करने वाले साधकों के जीवन में अनेक प्रकार के कष्ट व कठिनाइयाँ आते हैं, इसलिए तप-साधना में धैर्य व संयम की आवश्यकता होती है और तभी साधना पूर्ण होती है व साधक स्वयं को भगवत्कर्म के अनुकूल यंत्र बना पाता है।"

कुछ समय उपरांत पवित्रानंद पूर्णत: स्वस्थ हो गए मानो उन्हें नया जीवन मिला हो। वे गुरु के पास गए और बोले—"गुरुदेव! अब मैं स्वस्थ हो चुका हूँ। अत: आप मेरा मार्गदर्शन कीजिए।"

स्वामी जी ने कहा—"वत्स! अब मेरे जाने का समय हो गया है। मैं तुम्हारे स्वस्थ होने की ही प्रतीक्षा कर रहा था। परमात्मा का बुलावा आने ही वाला है।" शिष्यों को संबल प्रदान करते वे आगे कहने लगे—"तुम सभी निश्चिंत रहना; मैं तुम सभी के प्राणों में सदैव स्पंदित होता रहूँगा और तुम सबको सदा प्रेरित करता रहूँगा।"

स्वामी जी ने आगे कहा—"आज समाज में अज्ञान से ग्रस्त मनुष्य की दशा बहुत ही दयनीय है। उनके बीच जाकर तुम उनमें ज्ञान का अलख जगाओ। उन्हें सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दो। यह जगत् भगवान का ही भौतिक विस्तार है, अत: जगत् की सेवा ही भगवान की सेवा है। ईश्वर के मार्ग में व्यक्तिगत कामना के लिए कोई स्थान नहीं है। गुरु की इच्छा ही शिष्य की इच्छा है। यदि तुम सभी ऐसा कर सके तो वास्तव में भगवान के यंत्र बन सकोगे और यंत्र बनकर भगवत्कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकोगे।

कुछ रुककर स्वामी जी पुन: बोले—"साधको! अब तुम जो भी कर रहे होगे, वह तुम्हारे हाथों से मैं ही कर रहा होऊँगा।" इतना कहकर स्वामी आचार्यानंद जी पद्मासन में बैठ गए और योगबल से उन्होंने अपने शरीर का परित्याग कर दिया। स्वामी पवित्रानंद जी आश्रम के अन्य गुरुभाइयों के ऊपर आश्रम की जिम्मेदारी सौंपकर गुरु-कार्य के लिए निकल पड़े। स्वयं को अपने गुरु का यंत्र व निमित्त मात्र मानते हुए वे आजीवन निष्काम कर्म करते रहे।

जो कठिनाइयों से हार मान लेते हैं, वे निश्चय ही जीवन का दाँव हार जाते हैं और जो उनकी चुनौती स्वीकार कर उद्यत हो जाते हैं, वे उन्हें निश्चय ही परास्त कर देते हैं।

हमें भी यदि अपने गुरु के हाथों का यंत्र बनना है तो हमें भी आधे-अधूरे मन से नहीं, बल्कि पूर्ण समर्पण भाव से स्वयं को समर्पित करना होगा। हमें वासना और अहंकार की बाधाओं को पार करना ही होगा। व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा से मुक्त होकर, फलासक्ति से रहित होकर, अहंभाव से सर्वथा शून्य होकर ही भगवान के हाथों का यंत्र बना जा सकता है और उसके बाद ही भगवान का कार्य भी किया जा सकता है, जिसके फलस्वरूप साधक भगवत्कृपा का अधिकारी बन सकता है। समर्पण का यह मार्ग हममें से हरेक के लिए अवश्य ही खुला है। ❑

परिश्रम के साथ विश्राम भी है जरूरी

जीवनयात्रा में तन-मन की थकान स्वाभाविक है। अधिक श्रम, पारिस्थितिक दबाव या तनाव के कारण शरीर व मन पर अत्यधिक खींच-तान करने की स्थिति में हमारी दैनिकचर्या प्रभावित होती है। इसके लिए विश्राम की आवश्यकता पड़ती है। जीवन-साधना में नींद के साथ विश्राम तन-मन को तरोताजा कर देता है और कार्य को एकाग्रचित्त होकर करना संभव बनाता है। इसलिए जीवनशैली में विश्राम को स्थान देना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। अत: कुछ तन-मन को विश्रांति देने वाले तौर-तरीकों की चर्चा यहाँ की जा रही है।

शारीरिक विश्राम के लिए योग में प्रचलित श्वसन की प्रक्रिया बहुत उपयोगी रहती है, जिसमें शरीर के शिथिलीकरण का अभ्यास किया जाता है। इसमें पीठ के बल लेटकर शरीर के एक-एक अंग-प्रत्यंग पर ध्यान केंद्रित करते हुए इनकी थकान व खिंचाव को अनुभव करते हुए इन्हें ढीला छोड़ा जाता है। इसके साथ विश्राम के लिए अन्य योगासनों का अभ्यास भी किया जा सकता है। शरीर में प्रविष्ट थकान को दूर करने में मालिश बहुत उपयोगी रहती है। इसका विशेष लाभ लेने के लिए किसी जानकार से सहायता ली जा सकती है।

शरीर से अधिक व्यक्ति मानसिक तनाव, दबाव एवं खिंचाव के कारण थक जाता है, जिसका स्नायविक संस्थान से लेकर शरीर एवं मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके कारण व्यक्ति की एकाग्रता, स्मरणशक्ति एवं कार्य में रुचि कुंद पड़ जाती है और जीवन की यात्रा एक बोझिल सफर बन जाती है। इसके लिए मन को विश्रांत करने वाली जीवनशैली के नियमों का अनुसरण आवश्यक हो जाता है। यहाँ दैनिक जीवन में मानसिक विश्राम के कुछ उपयोगी सूत्रों की चर्चा की जा रही है।

धीरे-धीरे गहरा श्वास लें, इसका अभ्यास मन को शांत करने में प्रभावी रहता है। इसके साथ शीतकारी, शीतली जैसे प्रशांतक प्राणायामों का अभ्यास किया जा सकता है। किसी योग्य योगशिक्षक की देख-रेख में इन्हें सीखा जा सकता है।

मौसम के अनुकूल गरम या शीतल जल में स्नान करना भी थकान से उबारने बाला एक रामबाण नुसखा साबित होता है। विश्व भर के ठंढे इलाकों में गरम जल से भरे टब या कुंडों में इस तरह के प्रयोग आम चलन में देखे जा सकते हैं। घर पर भी इनकी व्यवस्था की जा सकती है। गरम पेय जैसे—गरम दूध या जड़ी-बूटियों का सेवन भी एक लाभकारी अनुभव रहता है।

कर्णप्रिय संगीत को सुनना मन को विश्रांति देने वाला व तनावमुक्त करने वाला एक अद्‌भुत अनुभव रहता है। थकान से उबरने के लिए संगीत के जादुई प्रभाव को अवश्य आजमाया जा सकता है। आजकल माइंडफुल मेडिटेशन का चलन है। इसका सार भी वर्तमान को पूरे होशोहवास में जीना है।

अपने वर्तमान में क्या हो रहा है, इस पर ध्यान केंद्रित करें; जैसे—अपने शरीर को सुनें, इसकी धड़कनें धीमे चल रही हैं, गहरी हैं या तीव्र—इस पर गौर करें। कमरे में कौन-कौन सी ध्वनियाँ सुनाई दे रही हैं—इनको सुनें। कमरे के बाहर पक्षियों का कलरव, गाड़ियों की आवाजें या एकदम शांति—इन सबको अनुभव भी किया जा सकता है।

मन को शांत करने वाले इन प्रयोगों को आजमाया जा सकता है। जब मन अस्त-व्यस्त होने के कारण तनाव की स्थिति में हो व थकान अनुभव कर रहा हो तो मन में बेतरतीब पड़े कार्यों की एक सूची बनाएँ और फिर इनको प्राथमिकता के आधार पर अंजाम देने की कार्ययोजना पर काम करें। आप देखेंगे कि मन का तनाव हलका हो रहा है और यह विश्रांति की ओर बढ़ रहा है।

दैनिक जीवन में कठिन समय में प्रार्थना मन को शांत करने का एक अचूक उपाय रहता है। आप अपने किसी विश्वसनीय मित्र या परिवार जन से मन का तनाव साझा करके भी मन को हलका कर सकते हैं। यदि कोई ऐसा सान्निध्य न हो तो एकांत में डायरी लेखन का अभ्यास भी किया जा सकता है। यह मन के तनाव या गुबार को हलका करने का एक प्रभावी उपाय रहता है।

रचनात्मक लेखन इसका अगला चरण हो सकता है। इसके बल पर व्यक्ति कठिन समय में भी आनंदपूर्ण वातावरण की सृष्टि कर लेता है। उन पलों को याद करें, जब आप शांत थे, प्रसन्न व प्रमुदित थे। अपने पुराने स्वर्णिम पलों के एलबम या विडियोज शिथिल मन में नए उत्साह का संचार कर सकते हैं। इसी प्रक्रिया में किसी प्रेरक या मनोरंजक कथा, संगीत, संग या किसी स्थान से जुड़ा अनुभव भी याद कर सकते हैं।

अपने आत्मीय मित्रों या परिवार जनों से ऐसे पलों की चर्चा कर पुरानी यादें भी ताजा की जा सकती हैं। आपस में हलकी-फुलकी विनोदपूर्ण बातें भी मन को हलका करती हैं। इसके साथ ठहाका मारकर हँसने का अभ्यास भी किया जा सकता है। जब भी ऐसा कोई अवसर मिले तो उसे चूकें नहीं। जब बहुत अधिक बैठने से तन-मन ऊब रहा हो तो घर से बाहर निकलें व टहलें। इससे भी विश्राम की आवश्यकता पूरी होती है।

प्रकृति की गोद में ऐसा प्रयोग अधिक प्रभावशाली रहता है। कोरोनाकाल में जब जीवन घर की चहारदीवारी में सिमट गया हो तो ऐसे में बाहर खुली हवा में, धूप में निकलना एक स्वास्थ्यवर्द्धक एवं विश्रांतिदायक अनुभव रहता है। इन पलों में कोई ऐसा कार्य करें, जिसमें आप आनंद लेते हों। यह रसोईघर से लेकर बागवानी, गायन, कला आदि कुछ भी हो सकता है।

अगर संभव हो तो आप किसी खेल को भी आजमा सकते हैं। साथ ही दूसरों से आशा-अपेक्षाएँ कम ही रखें; क्योंकि पूरा न होने पर ये मानसिक अशांति का कारण बनती हैं। संबंधों में कटुता एवं नकारात्मकता के भाव भी मानसिक रूप से तनाव व थकान का कारण बनते हैं। ऐसे में दूसरों के उपकारों का स्मरण करते हुए उनके प्रति कृतज्ञता का भाव बनाए रखें।

जीवन में जो अच्छा हुआ है या हो रहा है, उसको याद कर मन को सकारात्मक रखें। इसके साथ तनावपूर्ण वातावरण से स्वयं को अलग करें तथा एकांत, शांत या रुचिकर स्थल पर जाएँ। यदि संभव हो तो हरे-भरे एवं फूलों से खिले बगीचे में या जंगल में जाएँ। हवा में तैरती फूलों की खुशबू को अनुभव करें।

ऐसे में किसी पालतू पशु का सान्निध्य भी एक सहायक अनुभव रहता है। इसके अतिरिक्त नियमित व्यायाम करें। किसी भी तरह के नशे से बचें। नींद पूरी लें। हलका-फुलका सुपाच्य एवं पौष्टिक आहार करें तथा कुपथ्य से बचें। अपनी शांति को महसूस करें। टीवी से लेकर मोबाइल आदि में कम समय बरबाद करें तथा किसी रचनात्मक कार्य में व्यस्त हो जाएँ।

जितना हम ऐसा करेंगे, उतना जीवन के संघर्ष के बीच भी तन-मन से विश्रांति के पल जी सकेंगे और जीवन का भरपूर आनंद उठा सकेंगे। ❑

एक कमरे के एक कोने में मोमबत्ती जल रही थी तो दूसरे कोने में धूपबत्ती जल रही थी। मोमबत्ती तिरस्कारपूर्वक धूपबत्ती को देखकर बोली—"मैं भी कितनी भाग्यवान हूँ, चारों ओर मेरा ही प्रकाश फैल रहा है, सबकी आँखें मेरी ओर ही रहती हैं।" धूपबत्ती बोली—"यह तो ठीक है, परंतु परीक्षा के कठिन समय में धैर्य और साहस के साथ अडिग रह सको, तभी चमक की सार्थकता है।"

मोमबत्ती अपने अभिमान में चूर थी, उसने धूपबत्ती की बात अनसुनी कर दी। तभी हवा का तेज झोंका आया, उसके प्रहार से मोमबत्ती बुझ गई, पर धूपबत्ती ने और तीव्रता से सुगंध बिखेरनी प्रारंभ कर दी। कमरे में आच्छन्न नीरवता बोली—"वह चमक किस काम की, जो एक झोंके का सामना भी न कर सके।" क्षणिक उपलब्धियों पर अहंकार करना मूढ़ों का काम है।

प्रकृति की अनमोल धरोहर है जल

आज दुनिया जल संकट की समस्याओं से जूझ रही है। दिन-प्रतिदिन विकट होते जा रहे जल संकट से मुक्ति की पुकार सब तरफ सुनी जा सकती है। पानी पर बात करने के लिए सभी तैयार हैं, किंतु आश्चर्य है कि पानी बचाने और उसका सही प्रबंधन करने के प्रश्न पर सीधी भागीदारी की बात जब आती है, तब लोग किनारा कर जाते हैं।

सब जानते हैं कि जल जीवन का पर्याय है। पर उसी जल के जीवन के लिए सार्थक हस्तक्षेप से आनाकानी करने की आदत से बाज नहीं आते हैं। हम मानते जरूर हैं कि जल के बिना जीवन की कल्पना अधूरी है, हम जानते हैं कि जल हमारे लिए कितना महत्त्वपूर्ण है, लेकिन इसका इस्तेमाल करते वक्त हम यह भूल जाते हैं कि बेतरतीब इस्तेमाल का बे-इंतिहा हक हमें किसी ने नहीं दिया है।

हम जल का दोहन करना तो जानते हैं, किंतु उसके संरक्षण में हमारी रुचि जवाब देने लगती है। हम यह भी जानते हैं कि कुछ घंटे या कुछ दिनों तक भूखे तो रहा जा सकता है, पर पानी पिए बगैर कुछ दिनों के बाद जीना भी मुमकिन नहीं है। फिर भी अफसोस की बात है कि हम जल का दुरुपयोग एवं उसकी उपेक्षा करने के आदी हो गए हैं।

अब समय की माँग है कि जल संसाधनों के प्रबंधन को हमें निजी जीवन ही नहीं, सामाजिक सरोकार से जोड़कर आगे कदम बढ़ाना चाहिए तथा इसके लिए स्थायी तरीके खोजने चाहिए। वहीं स्थायी जल प्रबंधन की रणनीति में भारत की युवा शक्ति का समुचित निवेश करना चाहिए। इधर यह खबर भी हौसला बढ़ाने वाली है कि जल प्रबंधन पर शोध के लिए होनहार युवक आगे आ रहे हैं।

कई युवाओं को इस संदर्भ में अनेक पुरस्कार भी मिल चुके हैं। जल संरक्षण एवं प्रबंधन के कार्य में अनेक युवा आज शोधरत हैं। यहाँ इस उल्लेख का तात्पर्य यह है कि हमारे युवाओं में योग्यता, लगन, जुनून, जज्बा सब कुछ है, जिनका इस्तेमाल पानी के सवालों को हल करने के साथ ही सही ढंग से सही समय पर किया जाए तो बात बन जाए।

कौन नहीं जानता कि पानी प्रकृति की सबसे अनमोल धरोहर है। यह विश्वसृजन और उसके संचालन का आधार है। मानव संस्कृति का उद्‌गाता है। मानव सभ्यता का निर्माता है। पानी जीवन के लिए अनिवार्य है। पानी के बिना जीव-जगत् के अस्तित्व और साँसों की यात्रा की कल्पना भी संभव नहीं है। फिर भी सभी लोगों को पीने के लिए साफ पानी नहीं मिल पाता है। खेती- किसानी की आशाएँ पानी के अभाव में धूमिल हो जाती हैं।

नदियों का कलकल निनाद कब अवसाद में बदल जाएगा, कोई नहीं जानता? जलाशयों का जीवन कब ठहर जाएगा, कह पाना मुश्किल है। पानी न मिलेगा तो परिंदों की उड़ान पर भी सवालिया निशान लग जाएगा। वैसे भी उड़ान के लिए पानी रखने की जरूरत को हम भुला बैठे हैं। युवा शक्ति को स्वयंसेवी उद्यम के साथ-साथ रोजगारमूलक अभियानों में नियोजित किया जाना चाहिए, ताकि वे जल चेतना के दूत बनकर व्यावहारिक स्तर पर श्रेष्ठ प्रदर्शन कर सकें। युवा शहरों और गाँवों में पहुँचकर अच्छी आदतों से पानी की बचत का सार तत्त्व लोगों तक पहुँचाएँ। पानी पर हमारी निर्भरता दिनोदिन बढ़ती जा रही है और वहीं पानी के स्रोत दिनोदिन घटते जा रहे हैं।

हमें पेयजल, दैनिक दिनचर्या, कृषिकार्यों और उद्योग धंधों में पानी की आवश्यकता होती है, जिनकी पूर्ति के लिए हम उपलब्ध जल संसाधनों के साथ-साथ भूजल का भी भयानक दोहन कर रहे हैं। लगातार हो रहे दोहन से भूजल का स्तर प्रतिवर्ष नीचे जा रहा है। परिणामस्वरूप जलस्रोत सूखने लगे हैं। जल संकट गहराने लगा है। वर्षा भूजल स्रोत बढ़ाने का कार्य करती है। भारत में औसतन 1300 मिलीमीटर के आस-पास बारिश होती है।

अगर हम वर्षा जल का उचित प्रबंधन करें तो यह हमारी आवश्यकताओं के हिसाब से पर्याप्त है। जरूरत है तो केवल वर्षा के जल को सहेजने की। वैसे भी पानी कोई समस्या नहीं है, बल्कि पानी का भंडारण और पानी को प्रदूषित होने से बचाना एक चुनौती है।

हमारी युवा पीढ़ी इस सत्य को समझे और दूसरे लोगों को भी समझाए कि जल पर्यावरण का अभिन्न अंग है। यह मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है। मानव स्वास्थ्य के लिए स्वच्छ जल का होना नितांत आवश्यक है।

जल की अनुपस्थिति में मानव कुछ दिन ही जिंदा रह पाता है; क्योंकि मानव शरीर का एक बड़ा हिस्सा पानी होता है। अत: स्वच्छ जल के अभाव में किसी प्राणी के जीवन की क्या, किसी सभ्यता की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। यह सब आज मानव को मालूम होते हुए भी वह बिना सोचे-विचारे उसके जलस्रोतों में ऐसे पदार्थ मिला रहा है, जिनके मिलने से जल प्रदूषित हो रहा है।

जल संकट को दूर करने के कुछ उपाय इस तरह संभव हैं—अत्यधिक जल दोहन रोकने के लिए कड़े कानून बनाए जाएँ, जिनमें सजा का प्रावधान हो। तेजी से बढ़ती जनसंख्या पर नियंत्रण करते हुए तथा परस्पर विवादों को समाप्त करते हुए इस समस्या का शीघ्र निदान किया जाए।

इसके साथ ही ऐसी विधियों की खोज की भी आवश्यकता है, जिनसे समुद्री जल का शोधन कर उसका कृषि कार्यों में उपयोग किया जा सके। साथ ही कोई ऐसी व्यवस्था भी बनाई जाए, जिसके तहत नदियों के मीठे जल का अधिक-से-अधिक उपयोग किया जा सके।

भूगर्भीय जलभंडार की पुन: देख-रेख करने के अलावा छत से बरसाती पानी को सीधे किसी टैंक में भी जमा किया जा सकता है। बड़े संसाधनों के परिसर की दीवार के पास बड़ी नालियाँ बनाकर पानी को जमीन पर उतारा जा सकता है। इसी प्रकार कुओं में भी पाइप के माध्यम से बरसाती पानी को उतारा जा सकता है। इसी प्रकार वर्षा जल को एक गड्ढे के जरिए सीधे धरती के भूगर्भीय जल-भंडारण में उतारा जा सकता है।

जल संरक्षण से कुछ सीमा तक जल संकट की समस्या का निराकरण किया जा सकता है। जल को प्रदूषण से मुक्त रखने तथा इसकी उपलब्धता को बनाए रखने के कुछ और उपाय भी किए जा सकते हैं; जैसे वर्षा जल संरक्षण (रेन वाटर हारवेस्टिंग) को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

मकानों की छत के बरसाती पानी को ट्यूबवैल के पास उतारने से ट्यूबवैल रिचार्ज किया जा सकता है। शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के निवासी अपने मकानों की छत से गिरने वाले वर्षा के पानी को भूमि में समाहित कर भूमि का जलस्तर बढ़ा सकते हैं।

पोखरों में एकत्रित जल से सिंचाई करने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिससे भूमिगत जल का उपयोग कम हो। शहरों में प्रत्येक आवास के लिए रिचार्ज कूपों का निर्माण अवश्य किया जाना चाहिए, जिससे वर्षा का पानी नालों में न बहकर भूमिगत हो जाए।

तालाबों, पोखरों के किनारे वृक्ष लगाने की पुरानी परंपरा को पुनर्जीवित किया जाना चाहिए। ऊँचे स्थानों, बाँधों इत्यादि के पास गहरे गड्ढे खोदे जाने चाहिए, जिससे उनमें वर्षा जल एकत्रित हो जाए और परिणामस्वरूप बहकर जाने वाली मिट्टी को अन्यत्र जाने से रोका जा सके।

कृषि भूमि में मृदा की नमी को बनाए रखने के लिए हरित खाद तथा उचित फसल चक्र अपनाया जाना चाहिए। कार्बनिक अवशिष्टों का प्रयोग कर इस नमी को बचाया जा सकता है। वर्षा जल को संरक्षित करने के लिए शहरी मकानों में आवश्यक रूप से वाटर टैंक लगाए जाने चाहिए। इस जल का उपयोग अन्य घरेलू जरूरतों की पूर्ति में भी किया जाना चाहिए।

जल हमें नदी, तालाब, कुएँ, झील आदि से प्राप्त हो रहा है। जनसंख्या वृद्धि, औद्योगीकरण आदि ने हमारे जल स्रोतों को प्रदूषित किया है, जिसका ज्वलंत प्रमाण है हमारी पवित्र पावन गंगा नदी—जिसका जल कई वर्षों तक रखने पर भी स्वच्छ व निर्मल रहता था, लेकिन आज यही पावन नदी गंगा ही क्यों, बल्कि कई नदियाँ व जलस्रोत प्रदूषित हो चुके हैं।

यदि हमें मानव सभ्यता को जल प्रदूषण के खतरों से बचाना है, तो इस प्राकृतिक संसाधन को प्रदूषित होने से रोकना नितांत आवश्यक है अन्यथा जल प्रदूषण से होने वाले खतरे मानव सभ्यता के लिए खतरा बन जाएँगे। इसलिए 'बिन पानी सब सून' की सीख को अधिक अनसुनी न करने में ही बुद्धिमानी है। ❑

युगगीता —258

जिनके धार्मिक कार्य भी पाखंड और आडंबर से पूर्ण होते हैं

(श्रीमद्भगवद्गीता के देवासुरसंपद्विभागयोग नामक सोलहवें अध्याय की सौलहवीं किस्त)

[विगत किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के पंद्रहवें एवं सोलहवें श्लोकों की व्याख्या प्रस्तुत की गई थी। इन श्लोकों में श्रीभगवान कहते हैं कि आसुरी प्रवृत्ति वाले मनुष्य कहते हैं कि मैं धनवान हूँ, बहुत से मनुष्य मेरे पास हैं, मेरे समान दूसरा कौन है, हम खूब यज्ञ करेंगे, दान देंगे और आमोद करेंगे। इस प्रकार अज्ञान से मोहित रहने वाले तथा तरह-तरह के भ्रमित चित्त वाले, मोहजाल में भली भाँति फँसे हुए तथा पदार्थों और भोगों में अत्यंत आसक्त रहने वाले मनुष्य भयंकर नरकों में गिरते हैं। ऐसी सोच और ऐसी भाषा अहंकारी, अज्ञानी, आसुरी प्रवृत्ति के व्यक्तियों की भाषा है। उन्हें ही ये अभिमान हो जाता है कि धनबल और जनबल में उनके समकक्ष कोई और नहीं है।

वे ये समझने लग जाते हैं कि उनके धन का, उनके अनुयायियों का, सहयोगियों का कोई अंत नहीं और उनकी एक आवाज पर अनेक लोग उनके पीछे चलने को तैयार होंगे। रावण से लेकर सिकंदर, दुर्योधन से लेकर तैमूर लंग—इसी तरह के अहंकार तथा अभिमान से ग्रसित नजर आते हैं कि वे ही सर्वेसर्वा हैं। ऐसे ही लोगों को ये लगता है कि जीवन में परिष्कार की आवश्यकता नहीं है, बस, यज्ञ कर देने या दान दे देने से उनकी जिम्मेदारी पूर्ण हो जाएगी। यज्ञ करना एवं दान देना भी उनके लिए व्यक्तित्व परिष्कार का मार्ग न बनकर, अहंकार की पूर्ति का माध्यम बन जाते हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसा इसलिए होता है; क्योंकि उनका चित्त अहंकार से, अज्ञान से आवृत रहता है और इसीलिए अशुद्ध चित्त के कारण वे मोहमाया के पाश से ऐसे बँधते हैं कि सीधे नरक में जाकर के गिरते हैं। सारांश में कहें तो आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य की चेतना या प्रकृति विध्वंसक होती है। ऐसा मनुष्य ईश्वर को नहीं मानता, स्वयं को ही सर्वेसर्वा मानता है, प्रकृति के कर्मफल के विधान को भी नहीं मानता, परंतु साथ ही यज्ञ करने और दान देने के दंभ को भी नहीं छोड़ना चाहता है। ऐसा इसलिए; क्योंकि उसकी चेतना मात्र कपट करना, अहंकार करना और आडंबर करना जानती है।]

इसके उपरांत श्रीभगवान कहते हैं—

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्॥ 17॥

शब्दविग्रह—आत्मसम्भाविताः, स्तब्धाः, धनमानमदान्विताः, यजन्ते, नामयज्ञैः, ते, दम्भेन, अविधिपूर्वकम्।

शब्दार्थ—वे (**ते**), अपने आप को ही श्रेष्ठ मानने वाले (**आत्मसम्भाविताः**), घमंडी पुरुष (**स्तब्धाः**), धन और मान के मद से युक्त होकर (**धनमानमदान्विताः**), केवल नाम मात्र के यज्ञों द्वारा (**नामयज्ञैः**), पाखंड से (**दम्भेन**), शास्त्रविधिरहित (**अविधिपूर्वकम्**), यजन करते हैं (**यजन्ते**)।

अर्थात—वे अपने को सबसे श्रेष्ठ मानने वाले, घमंडी, धन और मान के मद में चूर रहने वाले, केवल दिखावे के लिए अविधिपूर्वक, दंभ से भरकर नाम मात्र के यज्ञों को करते हैं। जैसी कि पूर्व में चर्चा की गई है, आसुरी प्रवृत्ति वाले पुरुषों की या व्यक्तियों की मूल रुचि अपने अहंकार की पूर्ति में ही होती है; इसीलिए उनको लगता है कि वे श्रेष्ठतम हैं। उनसे बढ़कर और उनसे उपर कोई और नहीं हो सकता। उनके लिए प्रगति का अर्थ भी प्रतिद्वंद्विता हो

जाता है। वो जीवन में आगे बढ़ें इतना उनके लिए पर्याप्त नहीं होता, बल्कि वो दूसरों से आगे बढ़ें—ये उनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य हो जाता है। इसलिए जीवन का प्रत्येक आयाम उनके लिए एक तुलनात्मक दौड़ हो जाता है, जिसमें वे दूसरों से ऊपर, सबसे श्रेष्ठ दिखने का घमंड बरकरार रखना चाहते हैं।

ऐसी प्रवृत्ति वाले मनुष्य यदि धर्म भी करते हैं तो उनका धर्म भी धन के प्रदर्शन और मद की संतुष्टि में बदल जाता है। वे मंदिर बनवाते हैं तो चाहते हैं कि वो स्वर्णजड़ित हो, सबसे बड़ा, सबसे भव्य और सबसे विशाल हो। वे यज्ञ भी करते हैं तो उसके पीछे वे देवत्व के, बाँटने के, त्याग के, मानवता के, बलिदान के सूत्र को भूल बैठते हैं और करोड़ों रुपये खरच करने को यज्ञ मानने लगते हैं। देखा जाए तो यह भी उनकी अहंकार की यात्रा का ही एक अंग है। उनके लिए दान का अर्थ है, औरों से बड़ा दान और मंदिर का अर्थ है, औरों से ऊँचा मंदिर। उनके लिए धर्म का मात्र इतना प्रयोजन रह जाता है कि वो धर्म भी उनके अहंकार को, उनकी श्रेष्ठता को सिद्ध करता दिखाई पड़े।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के पास एक बार एक व्यक्ति सोने से जड़ित हार लेकर आया। उसे वो उनके चरणों में रखते हुए बोला—''क्या आप इसे माँ काली की प्रतिमा को पहना देंगे?'' रामकृष्ण परमहंस बोले—''क्यों?'' वह व्यक्ति बोला—''यह हार सबसे महँगे वाले सोने का है, सबसे बेहतरीन सुनार से बनवाया है—माँ को यह हार जरूर अच्छा लगेगा।'' स्वामी रामकृष्ण परमहंस बोले—''अरे! जो संपूर्ण सृष्टि की स्वामिनी हैं, जिन्होंने यह सारा ऐश्वर्य निर्मित किया है, उनके लिए यह धूल के समान है। तुम्हें सोना महँगा लगता है तो क्या भगवान को भी ऐसा ही लगेगा?''

ऐसा अनेक व्यक्तियों के साथ होता है। वे अगर शुभ भी करने का प्रयत्न करते हैं तो इसलिए, ताकि उनके स्वयं के अहंकार की पूर्ति हो सके। उनका दान, उनके यज्ञ—इसलिए होते हैं, ताकि उनको वाहवाही मिले, लोग उनका नाम लें और कहें कि वे श्रेष्ठ हैं। इसीलिए श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसी प्रवृत्ति वाले मनुष्य अपने आप को ही श्रेष्ठ मानने वाले, धन और मान के मद से युक्त होते हैं तथा अविधिपूर्वक दिखावे के लिए यज्ञादि कर्मों को करते हैं। उनका उद्देश्य इन शास्त्रविहित कर्मों को करके धर्म की रक्षा करना नहीं होता, बल्कि अपने अहंकार की पुष्टि करना होता है।

एक राजा की कथा इस संदर्भ में आती है। उसने अपने अहंकार की पूर्ति के लिए एक बार बड़े-बड़े यज्ञ करवाए। बहुत-सा दान दिया। अनेक लोगों ने उसकी बहुत प्रशंसा की और उनके प्रशंसा करने से उसका अहंकार उतना ही ज्यादा तृप्त होता गया। उसे लगने लगा कि वह सचमुच में बड़ा धार्मिक और बड़ा परोपकारी राजा है—उसके समान दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है।

एक दिन एक तपस्वी संत उसके यहाँ आए। राजा को लगा कि उसके धर्मार्थ कार्यों को देखकर वे उसकी प्रशंसा करेंगे। उसने उन्हें अपना खजाना भी दिखाया। उसमें अनेक रत्न पड़े थे, हीरे-जवाहरात थे। सब दिखाने के बाद राजा ने उन संत की ओर इस आशा से देखा कि वो उसकी तारीफ करेंगे, प्रशंसा करेंगे, पर संत बोले—''राजन्! क्षणभंगुर

मनुष्य कठिनाइयों में पड़कर वह शिक्षा प्राप्त करता है, जो दुनिया का कोई विद्यालय नहीं सिखा सकता।

में सुख कैसा? जो शाश्वत नहीं है, उसमें सुख या धर्म ढूँढ़ना मूर्खता है।''

राजा के अहंकार को यह सुनकर बहुत चोट लगी। उसने उन संत को सूली पर चढ़वाने का आदेश दे दिया। उसको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वे संत सूली चढ़ते समय भी मस्ती से मुस्करा रहे थे, मानो कुछ हुआ ही न हो। कुछ वर्षों बाद वो राजा एक युद्ध में पराजित हुआ। विजेता राजा ने उसको उसी के महल के खंभे से बाँधकर फाँसी चढ़ाने का आदेश दिया। तब उस राजा को उन संत की बातें याद आईं।

ऐसे ही आसुरी वृत्ति वाले दूसरों से प्रतिस्पर्धा करने के लिए यज्ञादि कर्म करने लग जाते हैं, ताकि उन्हें प्रसिद्धि मिले। ईश्वर और प्रकृति पर विश्वास न होने के कारण उनकी दृष्टि विधि पर भी नहीं रहती। इसीलिए उनके सारे प्रयत्न आडंबर बन जाते हैं और उनके द्वारा किए गए धर्मार्थ कार्य भी पाखंड के समान ही प्रतीत होते हैं। आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य यह पाखंड करते हुए भी स्वयं को श्रेष्ठ मानने के घमंड से भरे रहते हैं। (क्रमशः)

प्रात:कालीन जागरण बने दिनचर्या का हिस्सा

बचपन से सुनते आए हैं कि 'अर्ली टू बेड एंड अर्ली टू राइज, मेक्स ए मैन हैल्दी, वेल्दी एंड वाइज' अर्थात रात को जल्दी सोना व प्रात: जल्दी जागना, एक व्यक्ति को स्वस्थ, समृद्ध एवं ज्ञानवान बनाता है, लेकिन आज की जीवनशैली में यह सत्य नदारद हो चला है। पहले टीवी के कारण लोग देर से सोते थे तो आज मोबाइल ने हमारे जीवन में इस कदर प्रवेश पा रखा है कि देर रात तक व्यक्ति उसमें उलझा रहता है और जब रात को व्यक्ति देर से सोता है तो स्वाभाविक रूप से प्रात: सूर्योदय के बाद ही उठता है।

ऐसे में प्रात:जागरण एक बड़ी आबादी की दिनचर्या से गायब हो चुका है। हालाँकि लाइफ स्टाइल डिसऑर्डर के चलते लोग अब इसके महत्त्व को समझने लगे हैं। प्रात:जागरण के महत्त्व को शास्त्रों में जगह-जगह पर ब्राह्ममुहूर्त के रूप में बताया है। ब्राह्ममुहूर्त दिन का सबसे श्रेष्ठ समय माना गया है—जब प्रकृति जैसे सो रही होती है और ब्रह्मतत्त्व चैतन्य अवस्था में होता है। इसे निद्रा त्यागने का सर्वोत्तम समय माना गया है। ऋषियों के अनुसार इस समय उठने से व्यक्ति के बल, बुद्धि, विद्या और सौंदर्य में वृद्धि होती है।

ब्राह्ममुहूर्त सूर्योदय से डेढ़ घंटे पहले का समय है, जब चारों ओर एक नई स्फूर्ति एवं ताजगी होती है और पूरा वातावरण शांत-नीरव अवस्था में होता है। साथ ही रात की नींद और विश्राम से तरोताजा हुए मन-मस्तिष्क भी पूर्ण सक्रियता की अवस्था में होते हैं। दिनचर्या के शुभारंभ का यह समय सर्वश्रेष्ठ रहता है। हर समझदार व्यक्ति इस समय का सदुपयोग करता है और साधना की दृष्टि से तो इस समय का विशेष महत्त्व होता है; क्योंकि इस समय मन स्वाभाविक रूप से ध्यान करने के लिए प्रवृत्त होता है।

आश्चर्य नहीं कि हर सफल व्यक्ति की दिनचर्या में प्रात:जागरण की भूमिका को देखा जा सकता है। हालाँकि कई लोग रात को देर तक जागकर अपना कार्य निपटाते हैं और निश्चिंत होकर सोते हैं, लेकिन अधिकांशत: प्रात: जल्दी उठने वाले व्यक्तियों को ही अधिक क्रियाशील एवं रचनात्मक पाया गया है और इसके लाभ की सूची भी लंबी है। प्रात: के समय पूरा जगत्, इसके हर जीव-जंतु, यहाँ तक कि समूची प्रकृति सो रही होती है एवं इसलिए व्यवधान न्यूनतम होते हैं। इस समय मस्तिष्क अपनी पूरी क्षमता में कार्य करने की स्थिति में होता है। ऐसे में महत्त्वपूर्ण कार्यों को निपटाना आसान होता है।

पूरी दुनिया के जागने से पहले ही आप कई काम निपटा चुके होते हैं, जिसकी अपनी एक संतुष्टि रहती है। जीवन प्रबंधन की दृष्टि से तन, मन और अंतरात्मा से जुड़े सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यों को प्रात:काल अंजाम देते हुए एक शानदार दिनचर्या का शुभारंभ किया जा सकता है, जो फिर आपको दिन भर ऊर्जावान बनाए रखेगी। इस समय दिन भर की योजना से लेकर ध्यान, व्यायाम और महत्त्वपूर्ण बौद्धिक कार्यों को पूर्ण किया जा सकता है।

प्रात:काल की ताजी हवा में टहलना व व्यायाम करना भी स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत लाभप्रद रहता है। सुबह के कार्य खेल-खेल में आनंदपूर्वक पूरे होते हैं। इसके बाद सुबह के काम पूरे होने पर एक अच्छा एवं पौष्टिक नाश्ता कर लेना भी आगे की दिनचर्या का सबल आधार बनता है। इस तरह प्रात:जागरण तन, मन और समग्र स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभकारी रहता है। दिनचर्या के व्यवस्थित होने पर दिन के सारे कार्य संतोषजनक ढंग से पूरे होते हैं और ऐसे में रात को समय पर सोना संभव हो पाता है।

अच्छी नींद बेहतरीन मानसिक स्वास्थ्य को सुनिश्चित करती है। अस्त-व्यस्त दिनचर्या के कारण जो तनाव पैदा होता है, कार्य की उत्पादकता प्रभावित होती है व संकट की स्थिति बनी रहती है, उससे हम बच जाते हैं और परिवार के लिए भी समय निकाल पाते हैं। शोधों से भी स्पष्ट हुआ है कि प्रात:जागरण वाले व्यक्ति अधिक सक्रिय एवं प्रोएक्टिव होते हैं। वे समस्याओं व आने वाली चुनौतियों का बेहतरीन ढंग से अंदेशा रखते हैं व उनके लिए तैयार रहते हैं। कुल मिलाकर प्रात: उठने वाले अधिक ऊर्जावान, प्रसन्न एवं सुख-चैन में रहते पाए गए हैं व जीवन के किसी भी क्षेत्र में हों, अन्य लोगों से वे अधिक सफल रहते हैं।

प्रात:जागरण से एक आश्चर्यजनक आभास यह होता है कि जैसे आपको दो दिन मिल गए हों; क्योंकि ब्राह्ममुहूर्त से लेकर ऑफिस जाने से पहले इतने काम निपट जाते हैं कि लगता है जैसे एक दिन के काम पूरे हो गए। प्रात:जागरण के इतने लाभ होते हुए भी यदि दिनचर्या बिगड़ी हुई है, रात को देर से सोने की आदत बनी हुई है तो फिर एकाएक प्रात:जागरण कठिन हो जाता है। इसके लिए संकल्पपूर्वक एवं अध्यवसाय के साथ कुछ समय तक संघर्ष करना पड़ता है। प्रात: समय पर उठने के लिए सर्वसामान्य नियम तो यही है कि रात को समय पर सोया जाए।

यदि प्रात: चार-पाँच बजे उठना है तो रात को नौ-दस बजे तक सोना होगा। इसके लिए एक साथ कोई बड़ा परिवर्तन न करें। किसी क्रांतिकारी प्रयोग को करने के बजाय सुनियोजित ढंग से छोटे-छोटे कदम बढ़ाते हुए आगे बढ़ें। यदि उठने की आदत आठ बजे की है तो इसे धीरे-धीरे कम कर सकते हैं। पहले सप्ताह सात बजे उठें, अगले सप्ताह छह बजे और फिर पाँच बजे आदि। प्रारंभ में शरीर आनाकानी से लेकर विद्रोह पर उतारू हो सकता है, किंतु यदि हम दृढ़तापूर्वक अपने संकल्प पर आरूढ़ रहते हैं, तो फिर यह समय के साथ नई दिनचर्या का अभ्यस्त हो जाएगा। इसके लिए रात को सोने से पहले से इसकी तैयारी करें।

रात का आहार हलका व सात्त्विक रखें। एक-दो घंटा पहले सोशल मीडिया से दूर रहें और टीवी या मोबाइल के कार्य निपटा लें। हलके-फुलके स्वाध्याय से लेकर आत्मचिंतन एवं तत्त्वबोध की साधना के साथ निर्धारित समय पर बिस्तर में जाएँ। इसके साथ अलार्म घड़ी या मोबाइल को बिस्तर से दूर रखें। प्रात: जैसे ही नींद खुले, बिस्तर से तुरंत उठ जाएँ। स्वयं को इसके लिए प्रेरित करें, जिसमें उठते ही करने के लिए अपनी रुचि का या कोई अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य निर्धारित कर सकते हैं। इस तरह प्रात:जागरण के लाभ-ही-लाभ हैं, हानि कोई नहीं।

यदि आप अभी तक प्रात:जागरण को जीवन का अंग नहीं बना पाए हैं तो आज अभी इसके लाभों को देखते हुए प्रात: ब्राह्ममुहूर्त में जागरण के लिए संकल्पित हों। इसको जीवन का अंग बनाने का पुरुषार्थ करें, इसका अभ्यास करें और जीवन का अभिन्न अंग बनाते हुए अस्तित्व की नवीन संभावनाओं को साकार करने का आनंद लें। ❑

एक दिन शरीर के पाँचों तत्त्वों में झगड़ा हो गया। वे सब स्वयं को बड़ा बताने लगे अन्यों को छोटा व तुच्छ। वायुतत्त्व बोला—"मैं सबसे बड़ा हूँ। मैं न होऊँ तो नि:श्वास होकर मनुष्य का जीवन एक क्षण में ही समाप्त हो जाएगा।" पृथ्वी तत्त्व ने कहा—"अरे! मुझ पर तो यह शरीर खड़ा हुआ। इंद्रियों का आकार न हो तो तुम सब अपनी अभिव्यक्ति कैसे कर सकोगे ?" जल तत्त्व बोला—"जीवन का आधार तो मैं ही हूँ। रस न हो तो सब कुछ रसहीन हो जाएगा।" अग्नि तत्त्व ठहाका लगाते हुए बोला—"अरे! मेरी क्षमता तथा महत्त्व का अनुमान तो तुम लगा ही नहीं सकते। मैं न रहूँ तो यह शरीर क्षणमात्र में बरफ हो जाए।" आकाश तत्त्व हेकड़ी से बोला—"समस्त सूक्ष्मशक्तियों का संचालन तो मैं ही करता हूँ; मैं न रहूँ तो संसार खामोशी में डूबा समुद्र जैसा लगने लगेगा।" आत्मा ने चुपचाप शरीर छोड़ दिया। उन पाँचों तत्त्वों को विवशतापूर्वक आत्मा के साथ शरीर त्यागना पड़ा। अब उनकी समझ में आया कि असली मूल्य तो चेतना का है। प्राणचेतना के हटते ही प्राणी शव में बदल जाता है।

संत-विनोबा भावे

महापुरुषों के जीवन की यह विशिष्टता होती है कि वे निरंतर सत् चिंतन में क्रियाशील रहते हैं और एक अच्छे चिंतन को एक अच्छी योजना में परिणत कर पाना उनके लिए सहजता के साथ हो पाना संभव हो पाता है। ऐसा करते हुए उनके अंदर दोनों ही गुण—संवेदना एवं संघर्ष, एक साथ विद्यमान भी होते हैं। इन दोनों गुणों को साथ लेकर दृढ़तापूर्वक चलते हुए अनासक्त भाव से जीवन के यथार्थ से जूझने को कोई सदा तत्पर रहे तो यह कल्पनातीत ही प्रतीत होता है, परंतु 'संत' और 'बाबा' के नाम से प्रसिद्ध भारतीय स्वातंत्र्य की गांधी यात्रा के अनोखे सहभागी शांति के अग्रदूत विनोबा भावे की यही अनोखी पहचान है।

सभी परिचित हैं कि संत विनोबा भावे जी ने भूदान के लिए पूरे देश में पदयात्रा की थी। इस पदयात्रा को करने के पीछे उनका उद्देश्य सामाजिक प्रतिष्ठा की प्राप्ति करना नहीं, वरन लोगों का हृदय परिवर्तन करना था। संत विनोबा भावे न केवल एक प्रतिष्ठित समाज-सुधारक के रूप में जाने जाते हैं, बल्कि एक गंभीर चिंतक व दार्शनिक के रूप में उनका व्यक्तित्व समाज के सभी घटकों के प्रतिनिधियों के लिए प्रेरणास्पद है।

उनके प्रिय विचार थे—साम्य योग, समन्वय, सर्वोदय और सत्याग्रह। ये सब मिलकर उनके प्रिय जीवन-सूत्र को आकार देते हैं। वे आध्यात्मिक पंचनिष्ठा की बात किया करते थे। इस पंचनिष्ठा का तात्पर्य धन-संपत्ति के प्रति पवित्र भाव होने से था एवं साथ ही व्यक्ति के चिंतन में अपरिग्रह के भाव के होने से ही था। उनका कहना था कि जो इन भावों को अपने व्यक्तित्व में स्थान दे पाता है, वही समग्र व्यक्तित्व की प्राप्ति का अधिकारी बन पाता है।

साथ ही वे यह भी कहा करते थे कि इन गुणों की उपलब्धि सत्य और अहिंसा के रास्ते पर चलने से ही हो सकती है। वे स्पष्ट रूप से यह कहते थे कि संपत्ति का संग्रह मनुष्य के नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास के मार्ग में बड़ा अवरोध है।

संपत्ति के संग्रह का विरोध करने से उनका तात्पर्य औद्योगिक उत्पादन का विरोध करना नहीं था। इसके विपरीत वे उत्पादन की प्रक्रिया को महत्त्वपूर्ण मानते थे; क्योंकि उनके अनुसार वह सभी की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति का आधार होने के साथ-साथ, रोजगारप्रदाता और आत्मिक विकास में सहायक प्रक्रिया है।

विनोबा जी ने जीवनशैली और अर्थनीति के बीच गहरा सामंजस्य बनाया था और उनका विचार था कि स्वस्थ जीवन के लिए जरूरी वस्तुएँ तो प्रचुर मात्रा में होनी चाहिए ही, परंतु वस्तुओं के अनावश्यक उत्पादन और असंगत संग्रह पर नियंत्रण होना चाहिए। वे कहते थे कि लोभ और संग्रह—सुख व शांति की प्राप्ति के मार्ग में सबसे बड़े अवरोध हैं। इस दृष्टि से उनका चिंतन एक आध्यात्मिक मनोभाव को लिए हुए था, जिसमें सामाजिक विकास का पथ भी व्यक्तित्व के रूपांतरण से ही प्रशस्त हो पाता है।

उनकी वह सोच आज के समय में एक प्रासंगिक चिंतन के रूप में देखी जा सकती है। आज देश के छोटे-बड़े सभी शहर अनियंत्रित मात्रा में पैदा हो रहे कूड़े-कचरे के निस्तारण की विकट समस्या से जूझ रहे हैं। विनोबा जी यह भी मानते थे कि ऐसे अपरिग्रही उत्पादन से मनुष्य की स्वाभाविक क्षमताएँ भी घटती जाती हैं। इसलिए उनका कहना था कि उत्पादन का आधार पूँजी का शोषक-केंद्रीकरण नहीं होना चाहिए, वरन उसका आधार आर्थिक समानता की उपलब्धि होना चाहिए।

इसे ऐसे समझा जा सकता है कि शरीर का पोषण शरीर के कार्य से जुड़ा हुआ है और इसलिए पुरुषार्थी बनने से सामाजिक व आर्थिक शोषण को भी समाधान मिलेगा। इस दृष्टि से समाज में सबके साथ एकरूपता होनी चाहिए। अतः शिक्षा को एकांगी न होकर वाणी, मन, देह, बुद्धि, ज्ञानेंद्रियों आदि सबके विकास का माध्यम बनना चाहिए।

विनोबा जी मानते थे कि मानवता के भविष्य में हिंसा का कोई स्थान नहीं रहना चाहिए, इसीलिए वे मनुष्य के नैतिक विकास के बड़े पक्षधर थे। विनोबा जी के अनुसार

समाज का नैतिक स्तर ऊपर उठने के साथ समाज में प्रशासन की जरूरत भी कम होती जाएगी।

विनोबा जी की संकल्पना थी कि सर्वोदय अपने श्रेष्ठ रूप में शासनमुक्त होगा। आदर्श और मूल्यों के लिए समर्पित विनोबा जी कहते थे कि सम्यक आचरण, सम्यक वाणी और सम्यक विचार का परिपालन ही सत्याग्रह है। वे कहते थे कि परिपक्वता आने के साथ आत्मज्ञान और विज्ञान के तत्त्व—धर्म और राजनीति का स्थान ले लेंगे। उनका कहना था कि सत्यग्राही होने से ही व्यक्ति सत्याग्रही बनता है।

निष्काम कर्मयोगियों में अग्रणी विनोबा जी अपने जीवन में ज्ञान और कर्म को साधने तथा उनके बीच सामंजस्य बैठाने की सतत कोशिश करते रहे। ईश्वर-प्रणिधान और आध्यात्मिक जीवन को अपने निजी अनुभव में लाते हुए विनोबा जी ने साधु जैसा जीवन जिया और समत्व योग में अवस्थित रहे। उनके सांसारिक कार्य भी एक तरह से कण-कण में व्याप्त ईश्वर से जुड़ने और जोड़ने के प्रयास ही थे ।

गीता और उपनिषद् के साथ कुरान और बाइबिल के साथ अनेक भाषाओं और लिपियों को समझने की उनकी अनथक कोशिश ने बिनोबा जी को एक ऐसी अभूतपूर्व प्रतिष्ठा प्रदान की, जिसकी प्राप्ति अन्य किसी के द्वारा कर पाना संभव प्रतीत नहीं होती है। गीता की स्थितप्रज्ञ की अवधारणा को जीते हुए वे सुख-दुःख से अप्रभावित रहे और एक निरहंकारी के भाव से अपने युग की बलवती हो रही असंख्य समस्याओं से जूझते हुए भी वे सदा अविचल बने रहे।

विनोबा जी का लेखन और कर्म हमें अपने मूल स्वभाव की ओर ले जाता है । वह हमें अपने वास्तविक स्वरूप का अभिज्ञान या पहचान करवाने में हमारी मदद करता है और हमें याद दिलाता है कि हम कोई क्षुद्र या मूल्यविहीन प्राणी नहीं हैं, वरन हम परमात्मा की विराट सत्ता के प्रकाश से प्रकाशित प्राणी हैं और हमारा जीवन उद्देश्य उसी सत्य का साक्षात्कार करना है। इस तरह संत विनोबा एक अप्रतिम चिंतक व महापुरुष थे। ❑

किसी वन में एक ऋषि का आश्रम था। ऋषि अत्यंत वृद्ध हो गए थे। परलोक गमन का समय निकट आता देख उन्हें चिंता होने लगी कि उनके बाद आश्रम की जिम्मेदारी कौन सँभालेगा? इस हेतु उन्होंने अपने तीनों शिष्य संजय, राम और मोहन की परीक्षा लेने का निश्चय किया।

ऋषि ने उन तीनों को बुलाकर उनसे प्रश्न किया—"यदि भगवान तुम लोगों को दर्शन देकर कोई वर माँगने के लिए कहें तो तुम क्या माँगोगे?" शिष्य संजय ने कहा—"गुरुदेव! मैं तो संसार की सभी विद्याओं को प्राप्त करने का वर माँगूँगा।" मोहन बोला—"गुरुदेव! मैं तो ईश्वर से विपुल धन-संपदा माँगूँगा।" राम बोला—"आचार्यश्रेष्ठ! मैं तो ईश्वर से मानवमात्र के कल्याण का वर माँगूँगा।" राम के उत्तर से ऋषि संतुष्ट व प्रसन्न हो गए। वे उसे हृदय से लगाकर बोले—"वत्स! तू ही सर्वश्रेष्ठ शिष्य है। गुरुपद पर तू ही शोभित हो सकता है, तेरा कल्याण हो।" ऐसा कहकर गुरु ने राम को आश्रम का भावी गुरु बना दिया। श्रेष्ठ पुरुष वही होता है, जो सबकी उन्नति की कामना करता है।

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी – 2

ज्ञान और पराक्रम का पथ अध्यात्म

(उत्तरार्द्ध)

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव अध्यात्म को एक साहसिक पथ के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। वे कहते हैं कि अध्यात्म के पथ पर आगे बढ़ने का अर्थ यह नहीं कि व्यक्ति समस्याओं से भागने की तैयारी करने लगे, वरन अध्यात्म के पथ पर वही बढ़ पाता है, जो ज्ञानार्जन करने के अतिरिक्त पराक्रम प्रदर्शित करने का साहस भी रखता है। परमपूज्य गुरुदेव कहते हैं कि जिस पराक्रम की आवश्यकता है, वह पराक्रम आंतरिक शत्रुओं जिनमें काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि शामिल हैं—उनके ऊपर विजय प्राप्त करके दिखाया जाता है। वे कहते हैं—"इसी शौर्य और पराक्रम का नाम आध्यात्मिक भाषा में तेज, ओज और वर्चस् है। इनकी प्राप्ति ही आध्यात्मिक साधना का मुख्य उद्देश्य कहा जा सकता है।" आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

संकल्प बल है जरूरी

मित्रो! आध्यात्मिक प्रगति के लिए भी भगवान की भक्ति की जरूरत है। प्रेम की जरूरत है, कला की जरूरत है, श्रद्धा की जरूरत है, दया की जरूरत है। ध्यान की जरूरत है, लय की जरूरत है, तप की जरूरत है, लेकिन एक और चीज की जरूरत है, जिसका नाम है—संकल्प बल, प्राण बल। संकल्प बल यदि आपका नहीं हुआ तो आपका यह मन आपके काबू में नहीं रहेगा। तब आपका कोई कार्य पूरा नहीं होगा। यह अशांत होकर भागता फिरेगा। जब तक आप डंडा लेकर इसे धमकाएँगे नहीं कि देख अगर बदमाशी की तो डंडा मार-मारकर तेरी खाल उतार दूँगा। कल सवेरे उठना पड़ेगा। अगर नहीं उठा तो तुझे खाना नहीं मिलेगा। नहीं साहब! मन तो यह कहता है, मन तो वह कहता है। मन नहीं लगता। मन ही हो गया तेरा सब कुछ। मन के कहने पर ही चलेगा। मन तो मक्कार है, चोर है, दुष्ट है। इसे सही रास्ते पर लाना पड़ेगा। नहीं साहब! मन नहीं होता। मन नहीं होता तो घूम इसके साथ, तेरा बुरा यही करेगा। भला भी तेरा यही करेगा।

मित्रो! फिर क्या करेगा? अगर नहीं माना तो बेकाबू बैल की तरह इधर-उधर सींग मारता फिरेगा। इसे खूँटे से बाँध दे। फिर क्या करेगा? खोल दिया तो घास खा जाएगा, चारा खा जाएगा, खेती चर जाएगा। कहना न माने तो पिटाई कर। तो इसको बाँध। मन क्या है? घोड़ा है। अगर इसकी लगाम आपके हाथ में है, तो जिधर चाहेंगे, वह उधर ही चलेगा और बिना लगाम का जहाँ मन होगा, खाई, पहाड़, जंगल कहीं भी घूमेगा। अपने मन को काबू में रखो अन्यथा मन कभी काबू में आने वाला नहीं है। मस्तिष्क भी काबू में आने वाला नहीं है।

जिसको हम तेजस्विता कहते हैं, उसके गुण तुम्हें नहीं पता। यह तो हमारी कमजोरियाँ हैं, जो सब कुछ साफ कर देंगी। भीतर वाली कमजोरी, बाहर वाली कमजोरियों पर इतना ज्यादा घेरा डालकर खड़ी हो जाएगी कि आगे बढ़ना मुश्किल हो जाएगा। न भविष्य के बारे में सोच सकेगा, न अध्यात्म के बारे में सोच सकेगा। मित्रो! भौतिक-आध्यात्मिक, दोनों उन्नति प्राप्त करने के लिए हमें जो हिम्मत, जो साहस और पराक्रम दिखाने की जरूरत है, वह आध्यात्मिकता का अंग है। नहीं साहब! आध्यात्मिकता में कोई दम नहीं है। नहीं बेटे, आध्यात्मिकता के साथ जीवन जुड़ा हुआ है। इसके बिना अधूरा है।

दो धाराएँ—योग और तप

मित्रो! योग और तप की दो धाराएँ हैं। दोनों मिली हुई हैं। योग बेटे, ध्यान को कहते हैं। योगधाराओं की दृष्टि से अपने को और परमात्मा को मिलाने का प्रयास करते हैं। उस वृत्ति का नाम योग है। हम अपनी आत्मा को परमात्मा से मिलाते हैं। शरणागत होते हैं। समर्पण करते हैं। एक होने का प्रयास करते हैं। यह मैं योग की बाबत कह रहा हूँ। शिक्षापद्धति में इसे ब्रह्मविद्या, योग कहते हैं।

यह भावनात्मक उछाल है। भावनात्मक प्रवाह है। भावनात्मक परिष्कार है। भावनाओं को परिष्कृत करेंगे, भावनाओं को उज्ज्वल बनाएँगे, श्रेष्ठ बनाएँगे। भावनाओं को चारित्रिक बनाएँगे, भावनाओं को कोमल बनाएँगे। भावनाओं को संवेदनशील बनाएँगे, ताकि हमारी भावनाएँ ऐसी हो जाएँ जिसमें कि हम ब्रह्म को महसूस करने के लिए जितना प्रबल अपने आप को बनाएँगे और हम अपने आप को इतना गरम करेंगे, जितना कि ब्रह्म। दोनों को ऊँची क्वालिटी का बना लेंगे। हम दोनों की तरंगें एक हो जाएँगी।

मित्रो! पानी दूध में मिल सकता है। नहीं साहब! पत्थर का चूरा मिला दें। नहीं बेटे, यदि दूध में कुछ मिल सकता है, तो पानी मिल सकता है। मिट्टी का तेल मिला दीजिए। बेटे, मिट्टी का तेल ऊपर आ जाएगा और दूध नीचे रह जाएगा। पानी भारी है और मिट्टी का तेल हलका है। दोनों नहीं मिल सकते। ब्रह्म और जीव को मिलाने के लिए अपनी चेतना को, अपनी काया को, अपनी मनःस्थिति को कोमल बनाते हैं। मन को शीलवान बनाते हैं, चरित्रवान बनाते हैं, दिव्य बनाते हैं। उसका नाम योग है। तो फिर महाराज जी! योग से सिद्धि मिल जाएगी। नहीं, यह योग से नहीं मिलेगी। योग का एक और भाई है, पर भाई को लेकर के भी सिद्धि नहीं मिलेगी। मैं बता देता हूँ। महाराज जी! मैं खूब समाधि लगाया करूँगा, ध्यान लगाया करूँगा। सिद्धि नहीं मिलेगी, मैं कहे दे रहा हूँ। इसका एक और सहायक है। उसको लेकर के चल। सहायक कौन-सा है? उसका नाम है—तप।

मित्रो! तप क्या चक्कर है? तप से अपनी वृत्तियों को सुधारने का प्रयास करते हैं। शरीर क्या कहता है? हम तो आराम से सोयेंगे। सरदी-गरमी बरदाश्त नहीं करेंगे। ठंढक बरदाश्त नहीं करेंगे। अच्छा, तेरी हुकूमत हमारे ऊपर है या हमारी हुकूमत तेरे ऊपर है। पहले हमारी हुकूमत मंजूर कर, फिर हम तेरी बात मानेंगे और तभी बात करेंगे। हम हुकूमत चलाते हैं कि हम ठंढक में रखेंगे। नहीं साहब? ठंढक में तो हम नहीं रहेंगे। नहीं रहना पड़ेगा। यह क्या है—तप है। जमीन पर चल। अरे साहब? गरमी में कैसे चलेंगे। नहीं, नंगे पैर चलना पड़ेगा। नंगे पैर परिक्रमा लगानी पड़ेगी। काहे की, कहाँ की परिक्रमा लगा दूँ। गोवर्धन को नंगे पैर परिक्रमा लगानी पड़ेगी। नंगे पैर स्वयं चलना पड़ेगा।

गायत्री की उच्चस्तरीय साधना में अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनंदमय कोश के जागरण-अनावरण की विधि-व्यवस्था है।

इसका कर्मकांड और विधि-विधान समयानुसार गुरुदेव स्वयं ही बताएँगे, पर उनकी अति निकटवर्ती सहचरी होने के कारण मैं इतना ही कह सकती हूँ कि अपनी पाँचों इंद्रियों और पाँचों मनःसंस्थानों का परिष्कार करने में उन्होंने अथक परिश्रम किया था और निरंतर यह प्रयत्न किया था कि इन दसों देवताओं को विनाश के मार्ग पर एक इन्च भी नहीं गिरने दिया जाए, वरन उन्हें पवित्रता और प्रखरता के पथ पर ही अग्रसर रखा जाए।

इस प्रकार अंतरंग की देवशक्तियों को परिमार्जित कर उन्होंने देवता, मंत्र और गुरु का अनुग्रह प्राप्त किया और उन पाँच शक्तिकोशों को जाग्रत करने में वे सफल हो गए, जिन्हें अनेक अद्भुत ऋद्धि-सिद्धियों का केंद्र माना जाता है।

—परम वंदनीया माताजी

तो फिर नहीं जाते हैं। नहीं, शरीर को हमारी बात माननी पड़ेगी। चूँ बोल जाएगा। तू शरीर है न? हम पर हुकूमत चलाना चाहता है। अगर शरीर हमारे ऊपर हावी होता है और यह कहता है कि शरीर की मरजी से मन को चलना पड़ेगा। नहीं, अब हमने यह कसम खाई है कि हमारा शरीर

हमारे मन की आज्ञा पर चलेगा और उसको मानना पड़ेगा। हमने हुक्म दिया है कि चल, तो उसको चलना पड़ेगा और हमने हुक्म दिया है कि खाना नहीं मिलेगा। पेट में तो भूख लगेगी और खाना मिला नहीं, तो नींद नहीं आएगी। फिर उलटा-पुलटा कुछ भी खा लेगा। खाने में क्या चीज है? शरीर पर कंट्रोल करने से पेट हमारी बात मानेगा। शरीर को अपने वश में रखने के लिए एक छोटा-सा प्रयास है, यह अनुशासन है। यह डिसिप्लिन है। इसे मानना ही होगा।

स्वयं को तपाना है तप

मित्रो! सिपाही जब खाली-खाली कवायत करता है, हुक्म देने के बाद—अबाउट टर्न का अभ्यास करता है, तब वास्तव में माना जाता है कि यह मोर्चे पर जाने के लायक है। अरे साहब! हमें तो मोर्चे पर भेज दीजिए, फिर देखिए, हमारे कमाल। वहाँ जा करके हम क्या-क्या करके आते हैं। वहाँ तो आप जरूर करेंगे, पर यहाँ हम हुक्म देते हैं, जो अनुशासन देते हैं, पहले उसका पालन करके दिखाइए। नहीं साहब! यहाँ पर क्या फायदा। यहाँ कोई लड़ाई हो रही है क्या? जहाँ लड़ाई होगी, वहाँ करेंगे। लड़ाई में क्या करेंगे, पहले शरीर को उसके लिए तैयार तो कर। हमको अपनी प्रत्येक चीज के साथ, हर अंग के साथ नियंत्रण में रहना, इसका नाम है—तप। तप में हम अपने आप को तपाते हैं।

मित्रो! जिस जमाने में मैं आया, उसमें नास्तिकता का बोल-बाला था। आध्यात्मिकता के बारे में यह कहते थे कि आध्यात्मिकता तो बेकार है और वाहियात है। नास्तिकों से हमें कोई खास शिकायत नहीं। नास्तिकों से मैं हैरान नहीं। कम्युनिस्टों से मुझे कोई हैरानी नहीं; क्योंकि मैं यह समझता हूँ कि ये कहते रहेंगे कि हमने भगवान को देखा नहीं है, हमें दिखा दीजिए, अन्यथा भगवान नहीं है। हमारी लैबोरेटरी में सिद्ध कर दीजिए, हम मान लेंगे। ठीक है, बात तो उनकी सही है और आम आदमी की समझदारी और अक्लमंदी की निशानी है। अक्ल की बात कहें तो "जो बात जानो तो मानो।"

जो जान नहीं पाते, तो उसको क्यों मानते हैं। मैं यह समझता हूँ कि यह ईमानदार आदमी है और कल न सही परसों साइंस की कसौटी पर, लॉजिक की कसौटी पर, सत्य की कसौटी पर हर किसी को दिखा दूँगा कि देखिए, अभी-अभी आइन्स्टाइन रास्ता खोलकर गए हैं। दूसरे लोगों ने भी रास्ते खोल दिए हैं। इसमें एटम के पीछे कोई रिंग फोर्स काम करती है, विशिष्ट शक्ति काम करती है, लाइट काम करती है। लाइट से एक्टीविटीज पैदा होती है। लाइट नहीं होगी, तो एक्टीविटीज खतम हो जाएँगी। पूरी दुनिया में हलचल होती है, पेड़-पौधे उगते हैं, बड़े होते हैं, फल देते हैं, इसके पीछे कोई चीज काम करती है।

मित्रो! इन परिस्थितियों में मेरा मन था कि मैं परिस्थितियों को कहाँ-से-कहाँ ले जाऊँ? इसलिए खासतौर से मैं अपना जन्म लेकर के आया कि लोगों के सामने एक सबूत पेश करूँ कि असली अध्यात्म असली ढंग से असली वृत्तियों का उदाहरण रखूँ। असली अध्यात्म मैंने इस शिविर में सिखाने की कोशिश की और नकली अध्यात्म, जो वहम के रूप में आपके दिमागों पर न जाने कब से चढ़ा हुआ है कि भगवान जी को उल्लू बनाएँगे। भगवान जी की चमचागिरी करेंगे। भगवान जी को धूपबत्ती दिखाएँगे और भगवान जी से मनोकामना पूरी कराएँगे। यह असली अध्यात्म नहीं था। यह नकली अध्यात्म था। बे-बुनियाद का अध्यात्म, बे-सिलसिले का अध्यात्म था।

असली अध्यात्म का स्वरूप

मैंने आपको असली अध्यात्म का स्वरूप समझाया। असली अध्यात्म किसी आदमी की समझ में आए। एक और असली ढंग से करे, जैसे कि मैंने किया। पूजा की कोठरी तक मेरा अध्यात्म सीमित नहीं रहा। रोम-रोम में मैंने अध्यात्म को समाया। अपनी क्रिया में, अपनी वाणी में, अपने मन में, अपने वचन में, अपने तन में आध्यात्मिकता को पूरी तरह से समा लिया, जैसे कि शराब रोम-रोम में रम जाती है। आँखों में क्या, ओंठों में क्या, पैरों में क्या, दिमाग में शराब, हर जगह छाई रहती है। इस तरीके से मैंने शराब के तरीके से राम-राम किया और उसे रोम-रोम में रमा लिया।

मित्रो! अब मेरा बड़ा जबरदस्त सही वाला अध्यात्म है। सही-असली के द्वारा न केवल भगवान जी की पूजा-पाठ करने के लिए न केवल तस्वीरें मिलाईं, बल्कि अपना व्यक्तित्व सही बनाया, जिससे भगवान की शक्तियों का आना संभव हो सके। मैंने अपने आप को धोया और अपने आप को धुना। अपने आप को धोना और अपने आप को धुनना, ताकि रँगाई ठीक से हो सके। मित्रो!

यही सही अध्यात्म है, असली अध्यात्म है। असली अध्यात्म सही ढंग से असली लक्षणों द्वारा अपनाया जाए। अध्यात्म की फिलॉसफी असली होनी चाहिए—एक। उपासना का असली क्रम केवल पूजा-पाठ तक ही सीमित नहीं, वरन हमारे जीवन की प्रत्येक धारा से जुड़ा हुआ होना चाहिए। असली वाला अध्यात्म पूरी तरह से निष्ठा से भरा हुआ हो, श्रद्धा से भरा हुआ हो, चरित्र से भरा हुआ हो। अगर ऐसा होगा, तो असली परिणाम आएगा।

मित्रो! मैंने आपको साफ-साफ दिखा दिया है। आपको दिखाई नहीं पड़ता चमत्कार। आप चमत्कार देखिए। लाखों लोगों को देखिए, ज्ञान की धारा को देखिए। लोग हमको चलता-फिरता इन्साइक्लोपीडिया कहते हैं और आप पैसे का हिसाब देखेंगे? एक आश्रम पहले से बना चुके हैं और एक आश्रम यह बना रहे हैं। एक आश्रम और बनाएँगे। आपके पास अपना मकान है क्या? नहीं साहब! किराये के मकान में रहते हैं। हम तो मकान नहीं बना सके। देखिए यहाँ मकान-पर-मकान, जायदाद-पर-जायदाद बनाते जाते हैं और जो भी बनाते हैं, लाखों रुपये की बनाते हैं। आपकी तपोभूमि, शांतिकुंज और आगे भी बनाएँगे।

आपके पास पैसा है? हाँ, अंधाधुंध पैसा है। प्रभाव है? हाँ, हमारे पास इतना बड़ा प्रभाव है कि हम कहीं नहीं जाते और लोग हमारे पास आते हैं। दुनिया हमारे पास आती है। यह प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता आपको। कितने आदमी आँखों में से आँसू भरे हुए आते हैं और हँसते हुए चले जाते हैं। आपको नहीं मालूम है। आपको मालूम होना चाहिए। आप अपने दुःखों को लेकर आते हैं, दरद लेकर के आते हैं, पीड़ा को लेकर के आते हैं, कठिनाइयों को लेकर के आते हैं और रोते हुए आते हैं। फिर हँसते हुए चले जाते हैं। क्या आपको चमत्कार नहीं मालूम पड़ता। बाकी ढेरों चमत्कार हैं, जो हम आपको बताना नहीं चाहते। उन्हें बताने की जरूरत नहीं है।

गुरुदेव के असली शिष्य बनिए

मित्रो! अभी मैंने आपको असली अध्यात्म का लाभ बताया। आप असली अध्यात्म अगर सीख पाए तो मजा आ जाएगा। मैं नहीं जानता कि आप में से कोई तैयार हुआ कि नहीं हुआ। मैं अब विदा हो रहा हूँ और मेरे मन में यह तमन्ना बनी रहेगी कि मैं अपने पीछे कोई नमूने छोड़ करके नहीं आया। लोग गुरुजी के बारे में बताएँगे, तो बातें केवल कहानियाँ हैं, किंवदंतियाँ हैं क्या? मैं चाहता था कि मैं चला जाता तो मेरे पीछे ऐसे आदमी बाकी रहे होते, जो यह कहते कि नहीं साहब! ये किंवदंतियाँ नहीं हैं, कहानियाँ नहीं हैं। देखिए गुरुजी भी ऐसे थे और हम भी ऐसे हैं।

मित्रो! इस बात की बड़ी जरूरत थी, इसीलिए मैंने शिविर लगाए और आपको बुलाने की कोशिश की। आप आए। विवेकानंद को तलाश करने के लिए रामकृष्ण परमहंस स्वयं उनके पास गए थे, लाखों शिष्यों में से एक के पास। शिष्यों की भीड़ लगी रहती थी। केले लाने वाले चेले, माला पहनाने वाले चेले रामकृष्ण परमहंस के पास झक मारते रहते थे और हमारे पास भी झक मारते रहते हैं; लेकिन हमको ऐसे शिष्यों की तलाश थी, जो अपने जीवन की दिशा को, धारा को बदल देने की हिम्मत दिखा सकते हों और उतना आगे चल सकते हों, जैसे कि हम अपने गुरु की राह पर चले और हमारा गुरु हमारी राह पर चला। हमारे गुरु की सारी दौलत हमारी हो गई और हमारी दौलत सब गुरु की हो गई।

मित्रो! ऐसा आदान-प्रदान, ऐसा सहयोग करने में कोई समर्थ रहा होता, तो हम धन्य हो जाते। हम तलाश में हैं कि शायद कोई ऐसा आदमी मिल जाए। हम तलाश करते रहते हैं, इस मेले में पैंठ लगाते रहते हैं और देखते रहते हैं कि कोई आदमी हमारे काम का भी है इन सब में से। बेटे, खोजते-खोजते, खोटे सिक्के फेंकते-फेंकते हमारी इतनी उम्र आ गई। हमको असली सिक्के मिल जाते, तो हम धन्य हो जाते और हम भी निहाल हो जाते। अपनी इन पीड़ाओं को ले करके, दरदों को ले करके, ख्वाहिशों को ले करके, स्वार्थों को ले करके हम ये शिविर लगाते रहते हैं और हम क्या कर सकते हैं?

हम और आप बैरी की तरह से आमने-सामने बैठे हुए हैं। कहने को तो हम गुरु-शिष्य हैं, पर वास्तव में बैरी हैं। असल में आप मानें तो सत्य में हम और आप एकदूसरे के बैरी हैं। बाहर से दिखाई पड़ते हैं कि गुरु-शिष्य हैं। पैर भी छूते हैं, पर एकदूसरे को काटना चाहते हैं। हमारा तप और हमारा पुण्य जो किसी अच्छे काम में खरच हो सकता था, वह न हो और आपकी ख्वाहिशों में खरच हो जाए।

मित्रो! आप यही चाहते हैं न? हाँ साहब! यही चाहते हैं। तो बस, इसका मतलब यह हो गया कि आप हमको काटना चाहते हैं। हमारे पुण्य का लाभ जो हमको मिलना चाहिए था, वह आप लेना चाहते हैं। हाँ साहब! गुरुजी! आप तो भूखे रहिए, पर हमको मिठाई खिलाइए। हम समझ गए आपकी बात कि आप हमको काटना चाहते हैं। उन लोगों को काटना चाहते हैं, जिनकी जीवात्मा में शक्ति की जरूरत है। आप अपनी भौतिक कामनाओं के लिए उन लोगों को मारना चाहते हैं, जो बेचारे दु:खी हैं। जिनको सहायता की आवश्यकता है। आप अपने सुखों के लिए, अपनी संपत्ति के लिए, अपनी तरक्की के लिए, अपना पैसा बढ़ाने के लिए, मालदारी के लिए हमको काटना चाहते हैं और उन लोगों को अपने हक से महरूम रखना चाहते हैं, जो आज दु:खों में, कष्टों में डूबे हुए हैं।

आपका मतलब यही है न! हाँ साहब! यही है। तो बस ठीक है, आप हमको काटने के लिए आए हैं, हम जानते हैं और बेटे, हम भी आपको काटने के लिए खड़े हुए हैं, अगर हमारा लग गया दाँव। दाँव तो नहीं लगता। शतरंज बिछी हुई है। आप हमारा काटिए गुलाम और हम आपकी काटेंगे बेगम। दोनों की चाल बिछी हुई है। हम दोनों एकदूसरे के ऊपर मार करने और घात लगाने के लिए बैठे हुए हैं।

मित्रो! हमारा कहीं दाँव लगे तो हम आपको ऐसा पलटा मारें कि आपको भी नानी याद आ जाए। गुरुजी से क्या माँगने गए थे। हमारे गुरु ने ऐसा पलटा मारा कि हमारा सब कुछ छीन लिया। हमें भिखारी बना दिया। बेटे, हमारे घर की जायदाद छीन ली, खेती-बारी छीन ली। हमारी अक्ल छीन ली और हम भिखारी के तरीके से शरीर पर जो कपड़े पहने बैठे हैं और जो अपने पेट में खा लें, इसके अलावा कुछ नहीं है। कंगाल हैं। हमसे बड़ा कंगाल दुनिया में कोई नहीं हो सकता। जिसके पास अपना कहने के लायक अपना शरीर भी नहीं है, इसकी भी वसीयत की हुई है। हमारे गुरु ने सब ले लिया और हमको खाली कर दिया। हमारा दिवाला निकाल दिया और हमको बिकवा दिया।

हमसे जुड़िए और धन्य बनिए

अगर हमारा मौका लगे तो हम आपको सही कहते हैं, अगर हमारी घात चल जाए आपके ऊपर तो हम आपको मार सकते हैं, पर क्या कर सकते हैं, आप तो बड़े होशियार हैं। आप तो अपनी कौड़ी अलग रखते हैं। गुरुजी! हमारे पास मत आइए, दूर ही रहिए। हम आपको समझते हैं। यदि हम आपको बीज के तरीके से गला दें और आप वृक्ष के तरीके से उगें, तब आपके ऊपर पत्तों का, फूलों का और फलों का ऐसा अंबार लगे कि हम देखने वाले भी धन्य हो जाएँ, पर आप तो बीज के तरीके से गलने को तैयार ही नहीं हैं। हमारे और आपके बीच में रस्साकशी बनी हुई है। काश! यह रस्साकशी खतम हो जाती, तो हमारा शिविर सार्थक हो जाता।

मित्रो! अंधे और पंगे के तरीके से हमने अपना तरीका अख्तियार कर लिया होता तो मजा आ जाता। एक अंधा और एक पंगा था। अंधे की नहीं थीं आँखें और पंगे की नहीं थीं टाँगें। बेटे, हमारे पास अध्यात्म बल है, लेकिन सांसारिक बल और भौतिक बल नहीं है। हम अकेले असहाय के तरीके से बैठे रहते हैं। अगर हमारा पेअर, आपका और हमारा मिल जाता तो मजा आ जाता हमारी जिंदगी में। पंगे ने अंधे के ऊपर सवारी की और पंगे ने रास्ता बताया। बस, अंधे-पंगे दोनों एक साथ चले और पार हो गए। हम भी पार हो सकते थे, अगर हनुमान और राम के तरीके से हम और आप मिल जाते। हनुमान की भौतिक शक्ति और राम की आध्यात्मिक शक्ति। अर्जुन और कृष्ण के तरीके से हम और आप मिल जाते। गांधी और जवाहर के तरीके से हम और आप मिल जाते। बुद्ध और अशोक के तरीके से हम और आप मिल जाते। ईसा और सेंट पॉल के तरीके से हम और आप मिल जाते। समर्थ गुरु रामदास और शिवाजी की तरह हम और आप मिल जाते। चाणक्य और चंद्रगुप्त के तरीके से हम और आप मिल जाते। मित्रो! फिर कितना शानदार योग बनता और हम धन्य हो जाते। हमारे शिविर कितने सार्थक हो जाते और हमारे कार्य सफल हो जाते।

मित्रो! आप अपनी शक्ति की भावना हमको दे देते और हम अपने ज्ञान की भावना आपको दे देते, तो दोनों का ही उद्धार हो जाता, दोनों का ही कल्याण हो जाता। अंधे और पंगे के निशान बनाकर चलते। बेटे, मुश्किल मालूम पड़ता है हमें। अब हम कुछ उम्मीदें लगाते नहीं हैं। बड़ी निराशा के साथ, बड़ी मायूसी के साथ बात कर रहे हैं। मालूम नहीं, इसका कुछ परिणाम होगा भी या नहीं। अगर

कुछ हुआ तो आपके लिए भी आना सार्थक और हमारे लिए भी बुलाना सार्थक। अगर आपने अपने भीतर कायाकल्प किया, विचार करने की नई शैली अख्तियार की और भावी जीवन की धारा में कोई नया कायाकल्प किया, तो यह शिविर धन्य हो जाएगा और धन्य हो जाएँगे हम और धन्य हो जाएँगे आप। आज की बात समाप्त करते हैं बड़ी शुभकामनाओं के साथ, बड़े प्रेम और मुहब्बत के साथ और यह अपेक्षा करते हुए कि शायद आपकी प्रार्थना सुन करके हम कुछ करने का प्रयास करेंगे। हम आपकी सुनेंगे, लेकिन आप भी हमारी प्रार्थना कुछ सुनने की कोशिश कीजिए, अपने आप का कायाकल्प करने के रूप में। तभी सब सार्थक होगा। ॥ ॐ शान्ति ॥

दक्षिण भारत में अमरशक्ति नामक एक राजा राज्य करता था। उसके तीन पुत्र थे। उनके नाम थे—बहुशक्ति, उग्रशक्ति और अनंतशक्ति। इन तीनों में से किसी की भी अध्ययन में रुचि नहीं थी। ये तीनों ही महामूर्ख, नटखट और उपद्रवी थे। अपने पुत्रों के इन अवगुणों के कारण राजा बहुत चिंतित रहते थे।

एक दिन राजा ने भरे दरबार में अपनी चिंता प्रकट की और इसका समाधान बताने को कहा। वहाँ बैठे एक विद्वान विष्णु शर्मा ने कहा—"महाराज! आप इन तीनों पुत्रों को मुझे सौंप दीजिए। मैं छह माह में उन्हें राजनीति में पारंगत कर दूँगा।" राजा ने ऐसा ही किया।

विष्णु शर्मा उन तीनों राजकुमारों को अपने घर ले गए और उन्हें पशु-पक्षियों की रोचक कहानियाँ सुनाने लगे। ये राजकुमारों को बहुत रुचिकर लगती थीं। महामंत्री विष्णु शर्मा ने इन्हीं कहानियों के माध्यम से राजकुमारों को राजपद की मर्यादा का निर्वहन करना भी सिखाया। फलतः वे राजकुमार छह माह में ही राजनीति के प्रकांड विद्वान हो गए। तत्पश्चात महामंत्री विष्णु शर्मा ने उन्हें राजा अमरशक्ति को सौंप दिया। विष्णु शर्मा की यही कहानियाँ पंचतंत्र की कहानियों के नाम से प्रसिद्ध हो गईं।

विश्वविद्यालय परिसर से—197

नारी जागृति को संकल्पित विश्वविद्यालय

देव संस्कृति विश्वविद्यालय भारत की भूमि पर प्रतिष्ठित शैक्षणिक संस्थानों की लंबी सूची में अपना एक उल्लेखनीय स्थान रखता है। ऐसा होने के पीछे कारण यही है कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय की स्थापना का आधार विद्यार्थियों को मात्र शैक्षणिक ज्ञान और संबंधित उपाधियों से आभूषित करना नहीं, वरन इसका उद्देश्य प्रत्येक विद्यार्थी के अंदर सन्निहित विशिष्ट प्रतिभा को उभार करके बाहर लाना है। अब तक के अपने प्रयोगों में देव संस्कृति विश्वविद्यालय इस उद्देश्य की प्राप्ति करने में सफल व सक्षम भी रहा है।

यही कारण है कि देश-विदेश के अनेकों प्रतिष्ठित एवं गणमान्य अतिथि देव संस्कृति विश्वविद्यालय का भ्रमण करने में स्वयं को गौरवान्वित महसूस करते हैं। इसी क्रम में विगत दिनों उत्तराखंड राज्य की माननीया राज्यपाल महोदया, श्रीमती बेबी रानी मौर्य अपने हरिद्वार प्रवास के दौरान देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं शांतिकुंज पहुँचीं। देव संस्कृति विश्वविद्यालय पहुँचने पर उनका कुलपति एवं प्रतिकुलपति द्वारा स्वागत किया गया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय पहुँचने पर माननीया राज्यपाल श्रीमती मौर्य ने सर्वप्रथम प्रज्ञेश्वर महादेव मंदिर में विशेष पूजा संपन्न की। महाकाल के मंदिर की पूजा को उन्होंने विशिष्ट कहकर पुकारा एवं बारंबार उसी स्थान पर आने की अपनी भावना भी प्रकट की। उसके बाद राष्ट्र के लिए सर्वोच्च बलिदान देने वाले वीर शहीदों की स्मारक में बनी शौर्य दीवार पर उन्होंने श्रद्धांजलि भी अर्पित की।

इसके उपरांत माननीया राज्यपाल ने एशिया के प्रथम व एकमात्र बाल्टिक शिक्षा एवं संस्कृति केंद्र, जो कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय के द्वारा स्थापित महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठानों में से एक है—उसका अवलोकन किया एवं भारतीय संस्कृति को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाने के लिए विश्वविद्यालय द्वारा किए जा रहे विभिन्न क्रियाकलापों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इसके पश्चात राज्यपाल महोदया विश्वविद्यालय के स्वावलंबन केंद्र को देखने गईं।

ज्ञातव्य है कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय पर्यावरण के संरक्षण व संवर्द्धन की दिशा में विश्वस्तरीय प्रयत्न कर रहा है और देव संस्कृति विश्वविद्यालय के स्वावलंबन केंद्र द्वारा परिसर के समस्त कूड़े को रिसाइकिल करके उसको कागज बनाने, कपड़े में बदलने एवं इस तरह के प्रयोगों द्वारा स्वरोजगार को विकसित करने के अभिनव प्रयास किए जा रहे हैं। वहाँ उपस्थित महिलाओं को स्वावलंबी बनाए जाने वाले उपक्रमों तथा विभिन्न रचनात्मक एवं शैक्षणिक गतिविधियों से अवगत होने पर उन्होंने अत्यंत प्रसन्नता व्यक्त की।

इसके उपरांत प्रवास के अगले चरण में राज्यपाल महोदया गायत्री तीर्थ शांतिकुंज पहुँचीं। यहाँ उन्होंने परमपूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी की पावन समाधि पर पुष्पांजलि अर्पित कर देवभूमि की सुख-समृद्धि की प्रार्थना की व साथ ही गायत्री परिवार प्रमुखद्वय श्रद्धेय डॉ० प्रणव पण्ड्या एवं श्रद्धेया शैल दीदी से भेंट कर राज्य के विकास एवं महिला जागरण विषय पर चर्चा की।

इसी क्रम में उन्होंने गायत्री परिवार द्वारा आयोजित नारी सशक्तिकरण कार्यशाला को संबोधित करते हुए कहा—"मेरा गायत्री परिवार से बहुत पुराना रिश्ता है। पूज्य गुरुदेव की जन्मस्थली आँवलखेड़ा में मैं कई बार गई हूँ। वहाँ से मुझे आगे बढ़ने के लिए एवं नारियों के सर्वांगीण विकास के लिए कार्य करने की प्रेरणा सदा मिलती रही है। मैं अखण्ड ज्योति पत्रिका की नियमित पाठिका हूँ और उसे सदा अपने साथ रखती हूँ।"

इस अवसर पर गायत्री परिवार प्रमुख श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी ने कहा—"शांतिकुंज की स्थापना के स्वर्ण जयंती के अवसर पर नारी जागरण के विविध आयोजनों को गति दी जा रही है।" इसके साथ ही राज्यपाल महोदया को कन्या कौशल, नारी जागरण, युवा जागरण सहित विभिन्न रचनात्मक एवं सृजनात्मक कार्यक्रमों की जानकारी दी गई। अपनी इस यात्रा को राज्यपाल महोदया ने उनके कार्यकाल की सबसे उल्लेखनीय घटनाओं में से एक बताया।

यह भी सर्वविदित है कि वर्तमान समय में भारत समेत संपूर्ण विश्व कोविड के संक्रमण की मर्मांतक पीड़ा से गुजर रहा है। इन चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों के कारण विद्यार्थियों की शिक्षा भी गंभीर रूप से प्रभावित रही है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय सदा से विद्यार्थियों के समग्र, किंतु सुरक्षित विकास के लिए प्रयासरत रहा है।

इसी कारण विश्वविद्यालय ने विश्वविद्यालय की शैक्षणिक गतिविधियों को धीरे-धीरे नियमित अध्ययन के लिए खोलने के साथ-साथ उनके स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए विगत दिनों एक प्रशंसनीय प्रयास भी किया। यह प्रयास देव संस्कृति विश्वविद्यालय के द्वारा कोविड केयर सेंटर को खोलने के रूप में किया गया।

इसका उद्देश्य विश्वविद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थियों एवं सदस्यों के स्वास्थ्य को इन विषम घड़ियों में सुरक्षित रखना है। विश्वविद्यालय द्वारा बनाए गए इस 24 बेड के केयर सेंटर में प्रत्येक बेड के साथ ऑक्सीजन कॉन्सन्ट्रेटर की व्यवस्था रखी गई है एवं साथ ही दो चिकित्सकों और दो नर्सों की कुशल टीम को भी इस हेतु नियुक्त किया गया है। उत्तराखंड स्वास्थ्य विभाग द्वारा देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा उठाए गए इस सामयिक कदम की बहुत प्रशंसा की गई।

इसी के साथ विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक अध्यात्मवाद विभाग द्वारा एक नूतन प्रयोग करते हुए प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों के लिए एक ऐसी बालसंस्कारशाला को प्रारंभ किया गया, जहाँ पर वे वैज्ञानिक विकास के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति की दिशा को भी प्राप्त कर सकते हैं। श्रद्धेय कुलाधिपति जी ने इसे एक सराहनीय कदम घोषित किया। ❑

संत जेनगुन सुनसान में झोंपड़ी बनाकर रहते थे। एक दिन एक चोर उनके घर में प्रविष्ट हुआ और कीमती सामान टटोलता-तलाशता रहा। सादगीपूर्ण जीवनयापन कर रहे संत के घर उसे कुछ भी कीमती सामान हाथ न लगा। निराश होकर जब वह लौटने लगा तो खाली हाथ लौटते उस दीन पर संत को दया आ गई। संत दया भाव से उसे देख सोचने लगे—बेचारा! कितना जरूरतमंद, कितना हिम्मतवाला है और बड़ी आशा के साथ आए इस व्यक्ति को खाली हाथ लौटना पड़ रहा है।

संत जागते हुए सारा तमाशा देख रहे थे। चोर की हलचल भी उन्होंने पड़े-पड़े ही देखी। अब जब वह खाली हाथ लौटने लगा तो उन्होंने उसे आवाज देकर रोका और कहा—"खाली हाथ मत जाओ भाई! मेरे पहनने के कपड़े लेते जाओ, तुम्हारे काम आएँगे।" उसने कपड़े ले लिए और सकुचाता हुआ चला गया। जेनगुन बहुत प्रसन्न थे। नंगे बदन रात की खिली हुई चाँदनी में जा बैठे। पूरा चंद्रमा बहुत सुंदर दिख रहा था, जिसे देख प्रेम भाव में मन-ही-मन वे सोचने लगे—कैसा अच्छा होता यदि मैं यह सुंदर चाँद उसे दे सका होता। आत्मविस्तार में ही आह्लादित हो, वे स्वयं अनुगृहीत हो उठे।

अपनों से अपनी बात

ऐतिहासिक संकल्पों की भूमि है शांतिकुंज

लेखनी का एवं उद्बोधनों का अपना एक विशिष्ट महत्त्व एवं प्रयोजन है। एक के माध्यम से स्वाध्याय का तो दूसरे के माध्यम से सत्संग का प्रयोजन पूर्ण होता है। इन साधनों के होने के बावजूद उस उद्देश्य को पूर्ण कर पाना संभव नहीं हो पाता, जिसे उज्ज्वल भविष्य का आधार कहा जा सकता है। ऐसा इसलिए कि यदि मात्र ये दो ही उद्देश्य मानवता का कल्याण कर पाने की सामर्थ्य रखते होते तो संचार क्रांति के इस युग में जब टीवी, मोबाइल, इंटरनेट जैसे न जाने कितने सशक्त माध्यम उपलब्ध हैं—लोक-शिक्षण का कार्य इन्हीं माध्यमों से पूर्ण हो जाता, पर ऐसा हो कहाँ पाता है?

ऐसा इसलिए क्योंकि व्यापक स्तर पर क्रांति करने के लिए इन दोनों ही माध्यमों के पीछे प्रामाणिकता एवं प्रखरता का होना जरूरी है। दूसरों को प्रकाश वो ही दे पाता है, जो स्वयं भी प्रकाशित हो। दीप-ही-दीप को जला सकता है। व्यक्ति का स्वयं का व्यक्तित्व ही दूसरों के जीवन में आदर्शवादी प्रतिभा के जागरण का दैवी कार्य संपन्न कर सकता है। स्वयं जाग्रत एवं जीवंत व्यक्तित्व ही दूसरों के जीवन में क्रांतिकारी परिणामों को जन्म दे पाते हैं। तब ही दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन एवं सत्प्रवृत्तियों के संवर्द्धन जैसे युगांतकारी कार्य अपने अभीष्ट को प्राप्त कर पाते हैं।

पुरातन समय में इस तरह के व्यक्तित्व अनेकों स्थानों पर मिल जाया करते थे। उनकी अपनी चरित्र निष्ठा, आचरण में उपलब्ध सदाशयता, समाज में ऐसा प्रारूप तैयार कर पाने में सक्षम होती थी, जिससे सदा सर्वदा सतयुगी प्रेरणाप्रद वातावरण विनिर्मित रहता था और लोक-मानस का प्रशिक्षण भी साथ-साथ चलता रहता था। व्यक्तित्व प्रखर हों एवं गतिविधियाँ उत्कृष्ट हों तो जनसामान्य का सहयोग-सम्मान तथा दैवी अनुग्रह भी स्वतः ही उपलब्ध हो जाया करते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव ने इस तथ्य पर गंभीरतापूर्वक चिंतन करके शांतिकुंज का ढाँचा कुछ इस प्रकार तैयार किया कि युग-परिवर्तन का व्यावहारिक स्वरूप यहाँ देखने को मिल सके। इनमें से एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग—धर्मतंत्र से लोक-शिक्षण का यहाँ प्रारंभ किया गया। इस प्रयास के माध्यम से ऐसी गतिविधियाँ यहाँ निर्मित की गईं, जो बोधपूर्ण होने के साथ-साथ आंदोलनकारी गति को भी अपने भीतर समाहित रखती थीं।

मनुष्य की चेतना एवं अंतःकरण को बदल पाने की शक्ति-सामर्थ्य धर्मतंत्र में ही है। यदि व्यक्ति की आस्थाएँ एवं मान्यताएँ उच्चस्तरीय प्रयोजनों के लिए नियोजित हो जाती हैं तो फिर देखते-देखते बड़े आंदोलन स्वरूप पाने लगते हैं। आचार्य शंकर ने अकेले ही संपूर्ण भारत की सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक संरचना को एक नूतन रूप प्रदान कर दिया था। पीछे एक ही प्रयास था और वह था धर्मतंत्र के माध्यम से लोक-शिक्षण का। भगवान बुद्ध एवं आचार्य चाणक्य से लेकर समर्थ गुरु रामदास तथा भगवान महावीर द्वारा किए गए प्रयास भी कुछ ऐसे ही आधारों पर विनिर्मित हुए थे। इन प्रयासों के माध्यम से आने वाले परिणामों को लोक-शिक्षण, सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन का मेरुदंड कहा जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव ने इसी आधार पर शांतिकुंज के माध्यम से एक वैश्विक क्रांति को जन्म दिया। सन् 1952 में गायत्री तपोभूमि की स्थापना से लेकर मथुरा के सहस्रकुंडीय यज्ञायोजन के पीछे के चिंतन को यदि विचारक की दृष्टि से देखें तो पाएँगे कि उन प्रयासों के पीछे भी परमपूज्य गुरुदेव की मूल सोच यही थी कि धर्मतंत्र, लोक-शिक्षण देने का एक प्रमुख आधार बने।

ये प्रयास अत्यंत सफल रहे और देखते-देखते जनमानस में आदर्शवादी चिंतन को उभारने की क्रांति चल पड़ी। परमपूज्य गुरुदेव के द्वारा धर्मतंत्र से लोक-शिक्षण करने के इस बहुमुखी प्रयास को सही अर्थों में युग निर्माण योजना का शुभारंभ भी कहा जा सकता है और इसी प्रयास को परमपूज्य गुरुदेव ने शांतिकुंज के माध्यम से भी एक द्रुतगति देने का काम किया।

शांतिकुंज में एक दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रयास परमपूज्य गुरुदेव द्वारा किया गया कि उन्होंने इसे दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन

एवं सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन के मुख्यालय के रूप में प्रतिष्ठित किया। यज्ञ संस्कारों की प्रक्रिया का पुनर्जीवन करने के साथ-साथ उन्होंने उसमें यह सत्प्रयास जोड़ा कि इन कर्मकांडों में भाग लेने वाले प्रत्येक याजक को दक्षिणा के रूप में एक बुराई छोड़ना और एक अच्छाई अपनाना जरूरी था। अग्नि को साक्षी के रूप में लिया गया। नशा त्यागने से लेकर छुआछूत जैसी कुरीतियों को त्यागना, परदा प्रथा, महँगी शादियों, दहेज जैसी बुराइयों को त्यागने का आधार ये कार्यक्रम बने तो वहीं नित्य उपासना, वृक्षारोपण, बालसंस्कारशालाओं जैसे सृजनात्मक कार्यक्रमों की प्रतिष्ठा का आधार भी ये ही कार्यक्रम बने। इस तरह से साधारण से दिखने वाले कर्मकांडों ने क्रांति की एक नई लहर को जन्म दे दिया।

इसके साथ ही परमपूज्य गुरुदेव ने शांतिकुंज को जनजागरण के एक ऐसे केंद्र के रूप में स्थापित किया जहाँ गृहस्थ संन्यासी, लोकसेवियों के रूप में स्थायी रूप से निवास करते रहें और अनेक लोगों को जीवन दिशा प्रदान करने का कार्य अनवरत रूप से करते रहें। एक को देखकर दूसरे, दूसरों को देखकर सौवें एवं सौ को देखकर हजार के जागने की कहावत जगप्रसिद्ध है। परमपूज्य गुरुदेव द्वारा शांतिकुंज के माध्यम से ऐसे ही प्रयासों को जन्म दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप नवसृजन का अभियान घर-घर तक पहुँच सका एवं अनेकों के जीवन को बदल सका।

सबसे बड़ी एवं महत्त्वपूर्ण बात यह रही कि इन सारे कार्यक्रमों का आधार समयदान एवं अंशदान की ही परंपरा को बनाया गया। इन्हीं दो संकल्पों के माध्यम से व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण एवं समाज निर्माण जैसे महती संकल्प द्रुतगति से पूर्ण होते आज दिखाई पड़ रहे हैं। लोकसेवियों के शिक्षण के लिए जहाँ परमपूज्य गुरुदेव ने उपरोक्त गतिविधियों का मुख्यालय शांतिकुंज को बनाया तो वहीं वैज्ञानिक अध्यात्म जैसी समसामयिक विधा की स्थापना का कार्य भी शांतिकुंज में उनके द्वारा किया गया, ताकि आज के युग में तर्क, तथ्य, प्रमाण की कसौटी पर आस्थागत प्रयोजनों की विवेचना समाज के सम्मुख प्रस्तुत की जा सके।

इन सबके अतिरिक्त जो एक और ऐतिहासिक कार्य शांतिकुंज की धरती पर परमपूज्य गुरुदेव द्वारा किया गया, वह यह था कि उन्होंने यहाँ पर जटिल कार्यक्रमों को एक अत्यंत सरल, सहज स्वरूप में समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। दीपयज्ञों के रूप में चली विश्वव्यापी शृंखला को एक ऐसे ही उदाहरण के रूप में गिना जा सकता है। स्पष्ट है कि शांतिकुंज के माध्यम से परमपूज्य गुरुदेव ने पुरातनकालीन दिव्य आयोजनों को एक ऐसा आधुनिक स्वरूप प्रदान किया कि जिसका अन्यत्र उदाहरण देख पाना संभवतया संभव ही नहीं हो सके। शांतिकुंज को दूसरे शब्दों में ऐतिहासिक संकल्पों की भूमि कहा जाए तो यह तनिक भी गलत नहीं होगा। ❑

राजा ऋषभदेव 100 पुत्रों के पिता थे। उन्होंने यह व्यवस्था कर दी थी कि उनकी मृत्यूपरांत ज्येष्ठ पुत्र भरत को राजगद्दी दी जाए और शेष 99 पुत्र गृहत्याग कर संन्यासी हो जाएँ। पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर 98 पुत्रों ने संन्यास ले लिया। पर बाहुबली को यह निर्णय स्वीकार नहीं हुआ। उसने भरत के साथ ज्ञान की प्रतियोगिता रखवाई। उसमें वह जीत गया। इससे भरत को ईर्ष्या हुई। उसने बाहुबली को युद्ध के लिए ललकारा। बाहुबली ताकतवर था। उसने जैसे ही भरत को मारने के लिए हाथ उठाया, उसे यह विचार आया कि यदि मैंने अपने भाई के प्राण लेकर राजगद्दी सँभाली भी तो राज्य की जनता यही कहेगी कि जो राजा बनने के लिए अपने भाई का खून कर सकता है, वह जनता की सेवा क्या करेगा ? वह महत्त्वाकांक्षा को त्यागकर भरत को राजगद्दी सौंपकर तपस्या हेतु चल पड़ा और बाद में तीर्थंकर कहलाया।

आत्मिक ज्योति

पावन ज्योति प्रकाश पर्व सब, श्रद्धासहित मनाते हैं।
अंतस् ज्योति अखंड, अलौकिक, श्रद्धावान ही पाते हैं॥

भौतिक प्रकाश दो आयामी,
पहली 'आभा' कहलाती है।
और दूसरी 'ऊर्जा' के,
रूपों पहचानी जाती है।

जीवन जब होता प्रकाशमय, लोग विमल बन जाते हैं।
अंतस् ज्योति अखंड अलौकिक, श्रद्धावान ही पाते हैं॥

मानव जीवन को प्रकाशमय,
श्रद्धा ही कर पाती है।
औ बाह्य जिंदगी व्यापारों,
को गतिशील बनाती है।

श्रद्धासिक्त मनुज के अंतस्, अमृत धार बहाते हैं।
अंतस् ज्योति अखंड, अलौकिक, श्रद्धावान ही पाते हैं॥

गहन तिमिर में आशा का,
संचार किरण कर जाती है।
उत्कृष्ट आचरण अपनाने का,
साहस यह प्रगटाती है।

आदर्शवादिता के सारे, सद्गुण मन में भर जाते हैं।
अंतस् ज्योति अखंड, अलौकिक, श्रद्धावान ही पाते हैं॥

विकृतियों का साम्राज्य,
सब कुविचारों की थाती है।
अंतर्मन की ज्योति मनुज में,
नैतिक भाव जगाती है।

अंतर्मन की मंगल वाणी, से सुदीप जल जाते हैं।
अंतस् ज्योति अखंड, अलौकिक, श्रद्धावान ही पाते हैं॥

—शोभाराम शशांक

गायत्री परिवार औरंगाबाद, महाराष्ट्र एवं 'मराठवाड़ा इको टेरिअर्स' (पर्यावरण संबंधी कार्यों हेतु गठित भारतीय सेना की एक इकाई)
द्वारा लगभग 12000 पौधों का रोपण

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र.ति. 01-10-2021
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

रवि दाहिया (रजत पदक)
कुश्ती

पी.वी. सन्धू (ताम्र पदक)
बैडमिन्टन

मीराबाई चानू (रजत पदक)
भारोत्तोलन

लवलीना बोर्गोहन (ताम्र पदक)
मुक्केबाजी

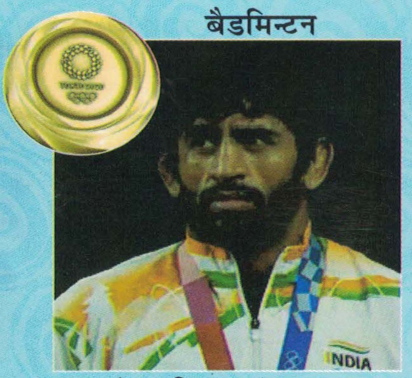

बजरंग पूनिया (ताम्र पदक)
कुश्ती

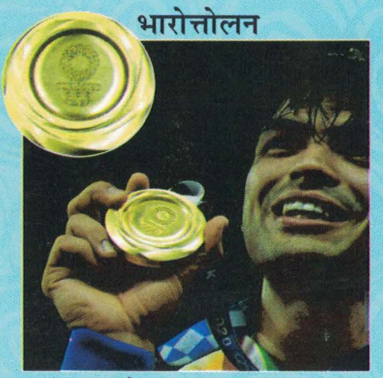

नीरज चौपड़ा (स्वर्ण पदक)
भाला फेंक

भारतीय हॉकी टीम (ताम्र पदक)

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूर भाष–0565-2403940, 2402574, 2412272, 2412273 मो बा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org